सर्वतोमुखी व्यक्तित्व

☐ आगम रत्नाकर की गहराइयों में अनवरत पैठ करने वाले,

☐ टीका, टव्वा, चूर्णि, भाष्यादि विवेचित आगम ग्रन्थों में अनिरीक्षित अनेक आगम-स्थलों की तथ्यात्मक अनुभूतिगम्य, तर्क-पुरस्सर, वीतराग सिद्धान्त से अविरुद्ध, सरल, सरस, सुबोध देशना-विवेचना प्रदान करने वाले,

☐ जिनेश्वरोपदिष्ट विशुद्ध निर्ग्रन्थ श्रमणाचार का पालन करने एवम् कराने वाले,

☐ सैकड़ों मुमुक्षु आत्माओं को संयम-महापथ पर गतिमान करने वाले,

☐ विश्व शांति के अमोघ उपाय स्वरूप समता दर्शन की अनुपम देन देने वाले,

☐ मानसिक तनाव से आक्रान्त जन-जीवन को आत्मिक शांति के पाथेय समीक्षण ध्यान एवम् समीक्षण योग की अभिनव विद्या प्रस्तुत करने वाले,

☐ दलित-पतित-शोषित-अस्पृश्य समझे जाने वाले वलाई जाति के हजारों मानवों को व्यसनमुक्ति के संस्कार देकर धर्मपाल जैन की संज्ञा से सम्बोधित करने वाले,

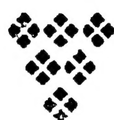
20 वीं शताब्दी के महामनस्वी, महातपस्वी, महायशस्वी, महावचस्वी, महातेजस्वी, सर्वतोमुखी व्यक्तित्व के धनी का संक्षिप्त परिचय होगा—

जिनशासन-प्रद्योतक, धर्मपाल-प्रतिबोधक, समता दर्शन प्रणेता, समीक्षण ध्यान महायोगी,

आचार्य श्री नानेश !

ऐसे महामण्डित व्यक्तित्व को युग-चेतना के शत्-शत् वन्दन-अभिनन्दन।

चेतना के स्वर



व्याख्याता :

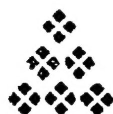
विद्ववर्य श्री शान्ति मुनि



संयोजन :

श्री गजेन्द्र सूर्या

श्री शीतल नलवाया



प्रकाशक :

श्री समता साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

इन्दौर-उज्जैन

प्रकाशक : समता साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

केन्द्रीय कार्यालय : 26, जवाहर मार्ग, मेवाड़ निवास, उज्जैन-456 001.

प्रकाशकीय कार्यालय : 1/1, मोहनपुरा, (जवाहर मार्ग), इन्दोर

मानद् सलाहकार : श्री चुन्नीलालजी मेहता, बम्बई

प्रकाशन तिथि ; आचार्य श्री नानेश के आचार्य पद के 25वें वर्ष पर सं. 2044 माघ कृष्णा तृतीया

प्रथमावृत्ति : 1100 प्रतियां

मूल्य : पन्द्रह रुपये

मुद्रक : श्री शरद् प्रिन्टर्स, चित्तौड़गढ़

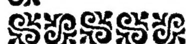
अंकेक्षक : श्री एम. एल. संचेती (चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट)
1/1, मोहनपुरा, इन्दोर-1



समर्पण

मेरी चेतना
में
अनुगुंजित
विशुद्धतम चेतना
के
जाज्वल्यमान
प्रकाश स्तम्भ
आचार्य
श्री नानेश
के
पुनीत स्वरों को—

—शान्ति मुनि

प्रकाशकीय*

साहित्य समाज के लिए दर्पण का कार्य करता है। अनेक संस्थानों के द्वारा विभिन्न प्रकार का साहित्य समाज के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। उसमें से कौनसा साहित्य कितना समाजोपयोगी है—यह पाठक या विद्वद्जन ही निर्णय कर सकते हैं।

समता साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट उज्जैन-इन्दौर भी गत वर्षों से सत्साहित्य प्रकाशन क्षेत्र में कार्यरत हैं। आचार्य श्री नानेश द्वारा प्रणीत जिणधम्मो जैसे ग्रन्थ-रत्न के प्रकाशन का भी सौभाग्य इस ट्रस्ट को प्राप्त हुआ था। उसके पश्चात् अन्य भी कई पुष्पों को ट्रस्ट ने पाठकों के कर कमलों में अर्पित किये।

यह कहते हुए हम गौरव का अनुभव कर रहे हैं कि वे पुष्प पाठकों की ज्ञान वृद्धि में अत्यन्त सहयोगी सिद्ध हुए हैं। उसका प्रबल प्रमाण है कि अल्प समय में ही जिण धम्मो जैसे ग्रन्थ-रत्न एवं अन्य पुष्पों का संस्करण समाप्यमान हैं तथा निरन्तर उनकी मांग बनी हुई हैं।

इसी शृंखला में ट्रस्ट द्वारा "चेतना के स्वर" नामक यह कृति पाठकों के कर कमलों में प्रस्तुत की जा रही हैं। आशा है पाठक इससे अवश्य लाभान्वित होंगे। इस कृति का प्रणयन समता दर्शन प्रणेता-जिनशासन प्रद्योतक, धर्मपाल प्रतिबोधक परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर पूज्य गुरुदेव श्री नानालालजी म.सा. के सुशिष्य तपोधनी, विद्ववर्य श्री शांति मुनिजी म.सा. ने किया है। इसके लिए ट्रस्ट मुनिश्री का आभारी हैं। साथ ही श्री अ. भा. साधु. जैन साहित्य समिति के संयोजक श्रीमान् गुमानमलजी चोरड़िया जिन्होंने इस कृति के प्रकाशन हेतु अनुमति दी उनके तथा इस कृति की सुन्दर मुद्रण व्यवस्था के लिए श्री शरद् प्रिंटर्स के सौजन्य को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। कृति के प्रकाशन के उदारमना—श्री सोहनलालजी सुराणा एवं श्री सम्पतराजजी बरला ने अर्थ सहयोग प्रदान कर हमारे उत्साह को बढ़ाया है। उनका आभार व्यक्त करना हम अपना कर्त्तव्य मानते हैं। इसके अलावा प्रत्यक्ष, परोक्ष जिनका भी सहयोग मिला उसके लिए हम कृतज्ञ हैं।

अध्यक्ष,

श्री प्रकाशचन्द्र सूर्या

श्री समता साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट,

इन्दौर-उज्जैन

प्रवचन–कौ. ता कहां पर

□ श्री नानेशाचार्य नमः □

अर्थ सहयोगी उदारमना
● श्री सोहनलालजी सुराणा का एक परिचय

श्रीमान् सोहनलालजी सुराणा रायपुर में विख्यात वस्त्र व्यवसायी के नाम से जाने जाते हैं। आपको विरासत में धार्मिकता से ओत-प्रोत संस्कार आपके पिता स्व. श्री अगरचन्दजी सुराणा से मिले हैं। स्व. श्री अगरचन्दजी सुराणा बगडी सज्जनपुर (राज.) में वस्त्र व्यवसायी के नाम से विख्यात थे। इसके साथ ही वे श्रमण संस्कृति के जाज्वल्यमान नक्षत्र, श्री मद् जवाहराचार्य के अनन्य निष्ठावान एवं समर्पित सुश्रावकों के नाम से जाने जाते थे। यही कारण है कि उनका वंशज आज व्यवसाय में सुविख्यात होने के साथ धार्मिक क्षेत्र में भी सबसे अग्रव्य हैं। स्व. श्री अगरचन्दजी सुराणा के दो सुपुत्र स्व. श्री चम्पालालजी एवं श्री सोहनलालजी ने भी व्यवसाय के साथ सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवा की हैं।

स्व. श्री चम्पालालजी सा. सुराणा की धर्मपत्नी श्रीमती विजयादेवीजी सुराणा जो आज प्राणी वत्सला के नाम से जानी जाती है। इन्होंने जीवदया, गोरक्षा एवं पशुवली प्रतिवन्ध के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं, जिसके परिणामस्वरूप गुजरात, राजस्थान एवं मध्यप्रदेश में आपको अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई तथा वहाँ के राज्य शासनों ने अहिंसा प्रेमियों की भावना का समादर करते हुए बलि प्रतिवन्धात्मक नियमों को पारित कर प्रभावशील किया।

श्रीमती विजयादेवीजी सुराणा ने उक्त राज्यों के साथ ही उड़ीसा, विहार एवं महाराष्ट्र में भी जीवदया, गोरक्षा एवं पशु वली प्रतिवन्ध के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रयास किये हैं। आपने इसके साथ ही तमिलनाडु, महाराष्ट्र, कर्नाटक, राजस्थान, मालवा एवं वस्तर आदि प्रान्तों में दौरा कर अनेक स्थानों पर महिला समिति की स्थापना कर उसके व्यापक प्रचार-प्रसार में सराहनीय सहयोग दिया एवं आज भी दे रहे हैं। समता स्वाध्याय के शिविरों के आयोजनों में आपकी विशेष रुचि है।

आपकी इसी भावना का परिणाम है कि आपका पूरा परिवार धार्मिक अनुष्ठानों में निरन्तर अग्रसर रहता है। यही कारण है कि श्री सोहनलालजी सुराणा एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रसालदेवीजी सुराणा समय-समय पर धार्मिक शिक्षण एवं जीवरक्षा जैसे कार्यों को आगे वढ़ाने में हमेशा श्रीमती विजयादेवीजी सुराणा को सहयोग प्रदान करते रहते हैं।

श्री सोहनलालजी सा. सुराणा के ज्येष्ठ सुपुत्र श्री नरेन्द्र कुमार जी सुराणा एवं श्री मनोहरलालजी सुराणा तथा पाँचों सुपुत्रियाँ भी धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। उनकी सुपुत्री श्रीमती दमयन्तीबाई का विवाह पनरुटी (तमिलनाडु) में श्रीमती चन्दनबालाजी का विवाह (बालाघाट) में, श्रीमती प्रभा कुमारी एवं श्रीमती वीना कुमारीजी का विवाह इन्दौर में धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत परिवारों में हुआ।

श्री सोहनलालजी सा. सुराणा ने समता साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट इन्दौर, उज्जैन के ट्रस्टी बनने हेतु एवं उपर्युक्त पुस्तक प्रकाशन हेतु जो उदार सहयोग दस हजार रु. देने की घोषणा की उसके लिए ट्रस्ट आपका हृदय से आभारी है। ट्रस्ट आपके स्वास्थ्य की शुभकामना करते हुए यही निवेदन करता है कि आप ट्रस्ट का उत्साह बढ़ाते रहें। ●

□ श्री नानेशाचार्य नमः □

अर्थ सहयोगी उदारमना

● श्रीमान् सम्पतराजजी बरला एवं श्रीमती जतनबाई बरला इन्दौर का एक परिचय

श्री सम्पतराजजी सा. बरला स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, नागपुर में डिप्टी चीफ इन्स्पेक्टर के वरिष्ठ पद पर हैं। श्री सम्पतराजजी एवं श्रीमती जतनबाई बरला परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानेश के अनन्य, निष्ठावान एवं समर्पित श्रावक श्राविकों में से हैं। आपका पूरा परिवार धार्मिक गुणों से ओत-प्रोत एवं समर्पित हैं। आप एक महत्वपूर्ण पद पर होने पर भी निरभियानी सरल, सौम्य, शान्त प्रकृति के उदारमना सज्जन पुरुष हैं।

आचार्य प्रवर के आचार्य पद के 25 वें वर्ष की पूर्ति के उपलक्ष में आपने समता साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट इन्दौर, उज्जैन को प्रस्तुत पुस्तक (चेतना के स्वर) में 2500/- रु. की राशि प्रदान की है। आपकी उदारता एवं सरलता सदैव स्मरणीय है। आपने ट्रस्ट को उदारतापूर्वक जो अनुदान दिया, ट्रस्ट आपका हृदय से आभारी हैं।

"निरुद्देश्य जीवन का कोई महत्व नहीं है। धर्म को आचरण में लाओ/सम्यक दृष्टि बनो। सम्यक दृष्टि भाव का जागरण होने के पश्चात् हमारे सामने जो घोर तिमिर छाया हुआ है, नष्ट हो जाएगा और अलौकिक ज्योति से हमारा जीवन जगमगाने लगेगा।"

चेतन जागरण सन्देश

हम आत्मदर्शन को समझने का प्रयास कर रहे हैं। हम यह जानने का प्रयास करते हैं कि हमारी चेतना किस तरह रूपान्तरित होती रहती है। जब हमारी चेतना में आत्म-दर्शन व आत्म-स्वरूप का ज्ञान होता है तो हमारे अन्दर भी एक अभूतपूर्व खुशी उत्पन्न होती है। हम जो भी त्याग, प्रत्याख्यान, उपवास, व्रत करते हैं, उनके पीछे यह भावना होती है कि हमारे कर्म बन्धन नष्ट हो जाएँ और हम अनन्त काल के जन्म-मरण के चक्कर से छूट जायें। संसार मे चार प्रकार के दुःख बताए गये हैं। जन्म, जरा, रोग और मृत्यु। जब हम सदा-सदा के लिए जन्म-मरण के चक्कर से छूट जायेंगे तो जीवन का चरम् उद्देश्य सिद्ध हो जाएगा। पिछले कई दिनों से हम सम्यक्-दृष्टि की ही चर्चा कर रहे हैं, वह हमारी मुक्ति साधना की प्राथमिक भूमिका है। चेतना में सम्यक् दृष्टि भाव के जागरण के साथ ही आत्मिक क्रियाओं में रूपान्तरण होता है।

सम्यक् दृष्टि भाव के जागरण के बाद जो खुशी होती है, वह बताई नहीं जा सकती। उसे वह व्यक्ति ही अनुभव कर सकता है। हमें शताब्दियाँ हो गई उपदेश व तत्वज्ञान को बताते व सुनते हुए। लेकिन कोरे उपदेश से कुछ नहीं होने वाला है, जब तक कि हम उसे अपने जीवन में नहीं उतारें।

उपदेशों का तत्त्व विवेचन या प्रतिपादन का उद्देश्य तो एक ही होता है, किन्तु दृष्टि भेद के कारण व्यक्ति उसे भिन्न-भिन्न रूप में ग्रहण कर लेता है। बात एक ही होती है, किन्तु उसे ग्रहण करने वाले अपने-अपने विचारों के अनुसार ढाल लेते हैं। तत्त्व एक ही होता है, लेकिन सभी उसके भिन्न-भिन्न ढंग से अर्थ लगाते हैं।

एक मेला लगा हुआ था। हजारों लोग थे उस मेले में। वहाँ एक बहुत बड़ा वृक्ष था। सभी उस वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे। वे सभी अलग-अलग धर्म को मानने वाले थे। बातों ही बातों में, जो राम का भक्त था, कहने लगा, "देखो! वह पेड़ पर जो चिड़िया बैठी है, कह रही है कि राम, सीता, दशरथ, राम, सीता, दशरथ······कितना अच्छा लग रहा है।" उसको टोंकते हुए मुसलमान ने कहा "यह तो कह रही है कि अल्लाह तेरी कुदरत, अल्लाह ·····"। वहीं एक पहलवान बैठा हुआ था, कहने लगा, "अरे यह चिड़ियां तो कह रही है–दण्ड, बैठक, कसरत–दण्ड, बैठक, कसरत"। इतने में एक माली बोल पड़ा—"नहीं भाई, यह तो यों बोल रही

है—गाजर–मूली–अदरक 'गाजर–मूली–अदरक'' । तुरन्त वहाँ बैठे व्यापारी ने कहा· ''तुम सब झूठ बोलते हो, वह तो कह रही है नोट तिजोरी में झट रख, नोट तिजोरी में झट रख'' ।

ऐसा करते-करते वे आपस में लड़ने लग जाते हैं । उधर एक सिपाही खड़ा-खड़ा देख रहा था । उसने सोचा कि ये व्यर्थ ही लड़ रहे हैं तो उसने आकर एक-एक डण्डा सभी के लगा दिया तब वे कहने लगे कि तुम यह क्या कर रहे हो? सिपाही ने कहा ''मुझे ऐसे सुनाई दे रहा है, यह चिड़िया मानो कह रही है-रख डण्डा कर मरम्मत, रख डण्डा कर मरम्मत'' । सभी चिल्लाए- ''चिड़िया ऐसे थोड़े ही कह रही है'' । तब सिपाही ने कहा, ''फिर तुम सब क्यों लड़ रहे हो ?'' तात्पर्य यह कि हर इंसान एक ही बात को अलग-अलग रूप में ग्रहण कर लेता है । यही स्थिति सम्यक् दृष्टि व मिथ्या दृष्टि के सम्बन्ध में कही जा सकती है । सम्यक् दृष्टि वाला व्यक्ति तत्व को सम्यक् रूप में ग्रहण कर आचरण में ढालता है।

सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि हमें साधना की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए, क्योंकि हजारों वर्ष व्यतीत हो गए उपदेश सुनते-सुनाते हुए, लेकिन फिर भी आप जागृत नहीं हुए हैं । उपदेश देने या सुनने से कुछ नहीं होगा, जब तक कि हम इन्हें जीवन में नहीं ग्रहण करेंगे । जिस तरह पिछला समय व्यतीत हो गया, उसी प्रकार यह जीवन भी व्यतीत हो जायेगा और हम कुछ नहीं कर सकेंगे ।

सम्यक् दृष्टि भाव का जागरण होने के पश्चात् हमारे सामने जो घोर तिमिर छाया हुआ है, वह नष्ट हो जाएगा और अलौकिक ज्योति से हमारा जीवन जगमगाने लगेगा । इसके लिए हमें कुछ परिश्रम भी करना होगा । अपने जीवन को उस स्वरूप में ले जाना होगा, जहाँ हम स्वयं अपनी प्रेरणा बनें । स्व-प्रेरणा आत्म-प्रेरणा । अन्तरंग आवाज ही हमारे बहुमुखी विकास का स्रोत होगी ।

मन के दो भेद माने गये हैं—द्रव्य मन और भाव मन । आपेक्षिक दृष्टि से हम भाव मन को अन्तरंग की आवाज कह सकते हैं, क्योंकि जो हमारे मन में विचार आता है, वही अन्तरंग के द्वारा बाहर प्रकट हो जाता है । वैज्ञानिक दृष्टि से मन के दो भेद माने गये हैं—चेतन मन व अवचेतन मन । यह तो केवल एक ही वैज्ञानिक फ्रायड का दृष्टिकोण है । उसके बाद में अनेक वैज्ञानिकों ने अलग-अलग व्याख्या की है । उन सब व्याख्याओं के द्वारा सात प्रकार के मन-मस्तिष्क का विश्लेषण किया गया है । कांसियस माइण्ड, और सब-कांसियस माइण्ड आदि. जिन्हें हम चेतन मन व अवचेतन मन के नाम से जानते हैं । आमतौर पर हम चेतन मन के आधार पर अपना लोक व्यवहार चलाते हैं । यद्यपि मनोविज्ञान बहुत ही गहराई का विषय है. लेकिन हम यह भी महसूस करते हैं कि हमारा धर्म मनोविज्ञान के निकटतम है । इसलिए ही जगह-जगह पर साधक को इस बात के लिए संकेत किया गया है कि हे मनुष्य ! तेरे मन में क्या है और तेरे मन की स्थिति किस दिशा में अग्रसर हो रही

है ? जब तक तुम अपने मन की गहराई तक नहीं पहुँचोगे, तब तक तुम अपने मन को रमणीय स्थल तक नहीं ला सकोगे ।

जब हमसे कोई गलती होती है तो हमारी आत्मा हमें सचेत करना चाहती है कि अरे ! नादान तू यह क्या कर रहा है ? यह उचित नहीं है । लेकिन, हम उस आवाज को इस कदर दबोच देते हैं कि वह अन्दर ही अन्दर समाप्त हो जाती है । पर क्या इससे हमें वास्तविक शान्ति मिलती है ? नहीं, कदापि नहीं । हमारा हृदय अन्दर रुदन मचाता है, लेकिन हम ऊपर से झूठी शान्ति जाहिर करते हैं । अब प्रश्न यह उठता है कि हमें क्या करना चाहिए कि जिससे आत्मिक सुख व चरमशान्ति की प्राप्ति हो ? इसके लिए जरूरत है, अन्तःचेतना की आवाज को सही मानकर उसे श्रद्धायुक्त अपने जीवन में उतारने की ।

आज के मनुष्य का जीवन इतना संघर्षशील, अशान्त व मशीनी हो गया है कि वह स्वयं की आवाज ही नहीं सुन पाता है । क्या आपने कभी यह विचार किया हैं ? क्या आपके इस जीवन को सफल जीवन की संज्ञा दी जा सकती हैं ? कदापि नहीं । क्योंकि निरुद्देश्य जीवन का कोई महत्त्व नहीं है । इस प्रकार का जीवन तो चिड़िया भी व्यतीत करती है । वह अपने रहने के लिए सुन्दर घोंसला बनाती है। अपने बच्चों का पालन-पोषण करती हैं, और यही काम मनुष्य भी करता है तो फिर मनुष्य और चिड़िया के जीवन में किस तरह भेद किया जाए ? मनुष्य को अपना जीवन धर्म-साधना में लगाना होगा, तब ही उसे एक सफल जीवन की संज्ञा प्राप्त होगी, और धर्म साधना में भी हम उसी समय सफल होंगे, जब हम अन्तःकरण से लक्ष्य पर गति करने का संकल्प लेंगे ।

यदि हम सम्यक् दृष्टि भाव के साथ उस लक्ष्य की ओर अग्रसर होंगे और उसे ही अपने जीवन की मन्जिल के रूप में चयनित करेंगे, तो हम निश्चय ही उस दिव्य ज्योति पुण्ज आत्मदर्शन को प्राप्त कर लेंगे ।

8 अगस्त, 1987

"रक्षा का यह बंधन हम क्यों न प्राणी मात्र के लिये स्वीकार करें। यह प्राणी मात्र की रक्षा का संकल्प आत्म-कल्याण के मार्ग को प्रशस्त करेगा। फिर रक्षा बंधन न केवल एक सांस्कृतिक पर्व बन कर रह जायगा, बल्कि यह आध्यात्मिक पर्व आत्मा के उत्सर्ग का पर्व होगा और हम जीवन के परम् लक्ष्य को पा सकेंगे।"



रक्षा पर्व

रक्षाबन्धन सांस्कृतिक व सामाजिक त्यौहार है। यह समस्त भारत में मनाया जाता है। इस त्यौहार की ऐतिहासिकता क्या है ? यह जानने के लिए हमें कुछ अतीत में जाना होगा। इसके पूर्व हम यह जान लें कि रक्षा बन्धन का अर्थ क्या है ?

रक्षाबन्धन होता है—रक्षा के लिए बन्धन। यानि कि इससे व्यक्ति पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व आ जाता है और चाहे उसके स्वयं का प्राण या राज्य ही क्यों न चला जाए, वह रक्षा के दायित्व से अलग नहीं हटता है। कहने का तात्पर्य है कि चाहे कैसी भी विषम परिस्थिति क्यों न आए, वह अपने उत्तरदायित्व को पूरा निभाता है और जो उससे रक्षा माँगता है, वह उसकी रक्षा करता है। रक्षाबन्धन के विषय में हमारे इतिहास में भी अनेक ऐसे प्रसंग आते हैं, जिनका अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि रक्षा का धागा बंधवाने वाला अपनी जाति, परम्परा को भुलाकर भी रक्षा करना अपना धर्म समझता है।

यह एक सांस्कृतिक त्यौहार है। यह समस्त भारत में बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। वैसे तो ऐसे सभी त्यौहारों के अनेक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक कारण रहे हैं, लेकिन जो सर्वमान्य कारण है, वह यह कि इंसान अपने दुःखों से कुछ समय के लिये त्राण पा सके।

भारत में मुख्यत: दो संस्कृतियाँ विद्यमान हैं। वैदिक संस्कृति और श्रमण संस्कृति। वैदिक संस्कृति में न्याय वैशेषिक, सांख्य आदि को माना गया है और श्रमण संस्कृति में जैन व बौद्ध धर्म को माना गया है। यद्यपि यह त्यौहार वैदिक संस्कृति व श्रमण संस्कृति दोनों में ही मनाया जाता है, लेकिन दोनों के मनाने में काफी अन्तर है। दोनों की ऐतिहासिकता के बारे में अलग-अलग प्रसंग हैं।

वैदिक संस्कृति में

बलि राजा ने एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया। उसमें अनेक लोगों को दान दिया। उसकी हर जगह चर्चा होने लगी। इन्द्र ने भी यह समाचार सुना, वे बहुत भयभीत हुए। उन्हें लगा कि वह यदि इसी तरह से कुछ दिन और दान देता रहा तो वह इतना पुण्य संचय करके मेरा सिंहासन हथिया लेगा। यह सिंहासन

मुझसे छिन जायेगा और यह उसे मिल जायेगा। अतः अब कुछ न कुछ उपाय अवश्य करना चाहिये। वे उसी क्षण विष्णु के पास गये और बोले कि मेरी रक्षा करो-मेरी रक्षा करो। विष्णु बहुत विस्मित हुए, उन्होंने कहा कि तुम तो स्वयं ही स्वर्ग के अधिपति हो। तुम्हें किसका डर है? तब इन्द्र ने विष्णु से कहा कि पृथ्वीतल पर बलि नामक राजा राज्य करता है। वह बहुत ही दानी व प्रतापी है। उसने महायज्ञ का आयोजन किया है और अब भी दान दे रहा है। यदि वह ऐसे ही दान देता रहा तो वह स्वर्ग की गद्दी का मालिक हो जाएगा। तब विष्णु का दिल पिघल गया। उन्होंने कहा कि "तुम चिन्तामुक्त हो जाओ, तुम्हारा सिंहासन कोई नहीं ले सकता"। तब विष्णु ने अपनी वैक्रियशक्ति के द्वारा वामन रूप बनाया और वे बलि के राज्य में याचकों की भीड़ में जाकर खड़े हो गये। तब बलि की नजर उन पर पड़ी। उन्होंने कहा कि "बोलिए विप्रमहाराज! क्या चाहिए?" तब उन्होने कहा कि "मुझे तो साढ़े तीन पांव जमीन चाहिए," तब बलि ने कहा कि "आपने इतनी तुच्छ वस्तु कैसे माँगी? आप जो कुछ माँगते मैं वह दे देता। तब उन्होंने अपना विशाल रूप प्रकट किया और तीन पांवों में तीन लोकों पर अधिकार कर लिया और पूछा कि "आधा पैर अब कहां रखूँ?" तो बलि ने कहा "मेरे सिर पर"। इस प्रकार उन्होंने बलि राजा को पाताल में पहुँचा दिया, उसके सिर पर पैर रखकर। विष्णु बलि की दानशीलता से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने कहा कि राजन हम तुम्हारे से खुश हैं, तुम जो चाहो मांगो। तब बलि राजा ने कहा कि मैं तो यहीं राज्य करना चाहता हूँ और आप मेरे द्वारपाल बनो। जब आप मेरे द्वारपाल रहेंगे तो मुझे किसी बात का भय नहीं रहेगा। विष्णु वचनबद्ध थे। वे उसके द्वारपाल बने और उधर उन्होंने इंद्र राजा को भी अपने राज्य के लिए आश्वस्त किया। इस प्रकार वैदिक परम्परा में विष्णु ने इन्द्र की रक्षा की और इस रूप में रक्षा पर्व का चलन हुआ। आज भी ब्राह्मण लोग धागा बांधते समय बोला करते हैं।

येन बद्धो बलि राजा, दानवेन्द्रो महाबली।
तेन तां प्रतिबध्नामि, रक्षा माचल, माचल

श्रमण संस्कृति में

श्रमण संस्कृति में भी रक्षाबन्धन पर एक प्रसंग बताया गया है। हस्तिनापुर में महापद्म राजा का राज्य था। एक बार वे अपने अन्तःपुर में बैठे थे और हास्य-विनोद चल रहा था। अचानक ही उन्हें अपने बालों में एक सफेद बाल दिखाई दिया। हास्य-विनोद का वातावरण दुःख/शोक में परिवर्तित हो गया। इधर रानी ने जब राजा से कहा कि राजन्, आपको यह अचानक क्या हो गया? यह हर्ष का वातावरण, दुःख/विषाद में क्यों परिवर्तित हो गया? अचानक आप इतने दुःखी कैसे हो गये?

तब महाराज ने कहा—

संदेशो ले आवियो, जम नो इत आवास।
दुश्मन आवि पहुँचशे, जवुं पड़शे जम द्वार॥

प्रिये ! दुश्मन का दूत आया है और वह अमंगल संदेश लाया है। वह चेतावनी दे रहा है कि राजन् सावधान हो जाओ। शत्रु ने चढ़ाई कर दी है। सिर पर सवार शत्रु का दूत चेतावनी दे रहा है। इसी कारण सुनहरे स्वप्न विलीन हो गये हैं।

आपूं जम ने लाचड़ी, आपूं लाख पसार।
आपूं करनी मूँदड़ी, पियु ने कूण ले जाय॥

"नाथ, चिन्ता न करो। यम का दूत आया है तो आने दो, मैं उसे रिश्वत देकर वश में कर लूँगी। देखती हूँ, मेरे प्रियतम को कौन ले जा सकता है?

गहली सुन्दरी वावली, घेला बोल मा बोल।
जो जम लेवत लांचड़ी, जग मां मरत न कोय॥

अरे ! पगली तुम वहुत भोली हो। यमराज किसी से कभी रिश्वत नहीं लेता। यदि वह ऐसा करता तो संसार में कोई भी मरता नहीं। राजा अपने सिर का बाल निकाल कर महारानी को दिखाते हैं और कहते हैं कि देखो यह सिर पर सवार है। क्या तुम इसे रिश्वत दे सकोगी? लौटा सकोगी? अभी यह एक ही आया है। लेकिन इसके वाद अनेक आने वाले हैं। उनके सामने बचाव का कोई मार्ग नहीं है।

वे महापद्म राजा एक वाल आते ही सचेत हो गये। परन्तु इस प्रकार जागृत होने वालों में आप में कितने हैं? आप सोचते होंगे कि एक आये तो डरें भी, वहुतों के आने पर क्या डरना? लेकिन वात यूँ ही समाप्त करने की नहीं है। आप आज अपने जीवन की अनमोन घड़ियाँ व्यतीत कर रहे हैं। लेकिन आपका कुछ भी साथ नहीं जाने वाला है। जब शरीर ही आपका साथ नहीं देगा तो दूसरे आपका साथ कैसे देंगे ? आज आप निर्भय हैं, मगर आपका विवेक अज्ञानपूर्ण है। उसे स्वीकार करके चलिए और महाराज महापद्म की तरह पहले ही सचेत हो जाइए।

हंसी के क्षण में ही राजा उठकर खड़े हो जाते हैं और कहते हैं कि अव तुम मेरी वहिन हो। मैं जीवन के महान् ध्येय को प्राप्त करने के लिए साधना के पथ पर जाना चाहता हूँ और आत्म-कल्याण करना चाहता हूँ और इसलिये संयम लेना चाहता हूँ।

इस प्रकार विरक्त होकर महापद्म ने संयम धारण करने की तैयारी की और अपने वड़े पुत्र को राज्य सौंप दिया। तव उनका छोटा वेटा कहता है कि पिताजी ! आप इतना सुख-वैभव छोड़कर क्यों जा रहे हैं? तब वे कहते हैं कि यहाँ मेरा कुछ नहीं है और ना ही कुछ मेरे साथ जाएगा। मैं जो कर्म करूँगा वे ही मेरे जीवन के

मुझसे छिन जायेगा और यह उसे मिल जायेगा। अतः अब कुछ न कुछ उपाय अवश्य करना चाहिये। वे उसी क्षण विष्णु के पास गये और बोले कि मेरी रक्षा करो-मेरी रक्षा करो। विष्णु बहुत विस्मित हुए, उन्होंने कहा कि तुम तो स्वयं ही स्वर्ग के अधिपति हो। तुम्हें किसका डर है? तब इन्द्र ने विष्णु से कहा कि पृथ्वीतल पर बलि नामक राजा राज्य करता है। वह बहुत ही दानी व प्रतापी है। उसने महायज्ञ का आयोजन किया है और अब भी दान दे रहा है। यदि वह ऐसे ही दान देता रहा तो वह स्वर्ग की गद्दी का मालिक हो जाएगा। तब विष्णु का दिल पिघल गया। उन्होंने कहा कि "तुम चिन्तामुक्त हो जाओ, तुम्हारा सिंहासन कोई नहीं ले सकता"। तब विष्णु ने अपनी वैक्रियशक्ति के द्वारा वामन रूप बनाया और वे बलि के राज्य में याचकों की भीड़ में जाकर खड़े हो गये। तब बलि की नजर उन पर पड़ी। उन्होंने कहा कि "बोलिए विप्रमहाराज! क्या चाहिए?" तब उन्होने कहा कि "मुझे तो साढ़े तीन पांव जमीन चाहिए," तब बलि ने कहा कि "आपने इतनी तुच्छ वस्तु कैसे माँगी? आप जो कुछ माँगते मैं वह दे देता। तब उन्होंने अपना विशाल रूप प्रकट किया और तीन पांवों में तीन लोकों पर अधिकार कर लिया और पूछा कि "आधा पैर अब कहां रखूँ?" तो बलि ने कहा "मेरे सिर पर"। इस प्रकार उन्होंने बलि राजा को पाताल में पहुँचा दिया, उसके सिर पर पैर रखकर। विष्णु बलि की दानशीलता से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने कहा कि राजन हम तुम्हारे से खुश हैं, तुम जो चाहो माँगों। तब बलि राजा ने कहा कि मैं तो यहीं राज्य करना चाहता हूँ और आप मेरे द्वारपाल बनो। जब आप मेरे द्वारपाल रहेंगे तो मुझे किसी बात का भय नहीं रहेगा। विष्णु वचनबद्ध थे। वे उसके द्वारपाल बने और उधर उन्होंने इंद्र राजा को भी अपने राज्य के लिए आश्वस्त किया। इस प्रकार वैदिक परम्परा में विष्णु ने इन्द्र की रक्षा की और इस रूप में रक्षा पर्व का चलन हुआ। आज भी ब्राह्मण लोग धागा बांधते समय बोला करते हैं।

येन बद्धो बलि राजा, दानवेन्द्रो महाबली।
तेन तां प्रतिबध्नामि, रक्षा माचल, माचल

श्रमण संस्कृति में

श्रमण संस्कृति में भी रक्षाबन्धन पर एक प्रसंग बताया गया है। हस्तिनापुर में महापद्म राजा का राज्य था। एक बार वे अपने अन्तःपुर में बैठे थे और हास्य-विनोद चल रहा था। अचानक ही उन्हें अपने बालों में एक सफेद बाल दिखाई दिया। हास्य-विनोद का वातावरण दुःख/शोक में परिवर्तित हो गया। इधर रानी ने जब राजा से कहा कि राजन्, आपको यह अचानक क्या हो गया? यह हर्ष का वातावरण, दु;ख/विषाद में क्यों परिवर्तित हो गया? अचानक आप इतने दुःखी कैसे हो गये?

तव महाराज ने कहा—

संदेशो ले आवियो, जम नो इत आवास ।
दुश्मन आवि पहुँचशे, जवुं पड़शे जम द्वार ।।

प्रिये ! दुश्मन का दूत आया है और वह अमंगल संदेश लाया है । वह चेतावनी दे रहा है कि राजन् सावधान हो जाओ । शत्रु ने चढ़ाई कर दी है । सिर पर सवार शत्रु का दूत चेतावनी दे रहा है । इसी कारण सुनहरे स्वप्न विलीन हो गये हैं ।

आपूं जम ने लाचड़ी, आपूं लाख पसार ।
आपूं करनी मूँदड़ी, पियु ने कूण ले जाय ।।

"नाथ, चिन्ता न करो । यम का दूत आया है तो आने दो, मैं उसे रिश्वत देकर वश में कर लूँगी । देखती हूँ, मेरे प्रियतम को कौन ले जा सकता है ?

गहली सुन्दरी वावली, घेला बोल मा वोल ।
जो जम लेवत लांचड़ी, जग मां मरत न कोय ।।

अरे ! पगली तुम वहुत भोली हो । यमराज किसी से कभी रिश्वत नहीं लेता । यदि वह ऐसा करता तो संसार में कोई भी मरता नहीं । राजा अपने सिर का बाल निकाल कर महारानी को दिखाते हैं और कहते हैं कि देखो यह सिर पर सवार है । क्या तुम इसे रिश्वत दे सकोगी ? लौटा सकोगी ? अभी यह एक ही आया है । लेकिन इसके वाद अनेक आने वाले हैं । उनके सामने बचाव का कोई मार्ग नहीं है ।

वे महापद्म राजा एक वाल आते ही सचेत हो गये । परन्तु इस प्रकार जागृत होने वालों में आप में कितने हैं ? आप सोचते होंगे कि एक आये तो डरें भी, वहुतों के आने पर क्या डरना ? लेकिन वात यूँ ही समाप्त करने की नहीं है । आप आज अपने जीवन की अनमोल घड़ियाँ व्यतीत कर रहे हैं । लेकिन आपका कुछ भी साथ नहीं जाने वाला है । जब शरीर ही आपका साथ नहीं देगा तो दूसरे आपका साथ कैसे देंगे ? आज आप निर्भय हैं, मगर आपका विवेक अज्ञानपूर्ण है । उसे स्वीकार करके चलिए और महाराज महापद्म की तरह पहले ही सचेत हो जाइए ।

हंसी के क्षण में ही राजा उठकर खड़े हो जाते हैं और कहते हैं कि अव तुम मेरी वहिन हो । मैं जीवन के महान् ध्येय को प्राप्त करने के लिए साधना के पथ पर जाना चाहता हूँ और आत्म-कल्याण करना चाहता हूँ और इसलिये संयम लेना चाहता हूँ ।

इस प्रकार विरक्त होकर महापद्म ने संयम धारण करने की तैयारी की और अपने वड़े पुत्र को राज्य सौंप दिया । तव उनका छोटा वेटा कहता है कि पिताजी ! आप इतना सुख-वैभव छोड़कर क्यों जा रहे हैं ? तव वे कहते हैं कि यहाँ मेरा कुछ नहीं है और ना ही कुछ मेरे साथ जाएगा । मैं जो कर्म करूँगा वे ही मेरे जीवन के

स्रोत होंगे। इसलिए मैं साधना, संयम, तप के मार्ग पर जा रहा हूँ। तब विष्णु कुमार ने संयमोद्यत पिता से कहा कि आप गृहत्याग कर रहे हैं तो मैं भी आपके साथ जाना चाहता हूँ और विष्णु कुमार ने भी गृहत्याग कर संयम धारण कर लिया। अब वे दोनों पहाड़ पर तपस्या करने लगे। काफी कठिन तपश्चर्या उन्होंने की तब उन्हें अनेक लब्धियाँ प्राप्त हो गयी।

उधर उज्जैन नरेश के बलि, नमूची, प्रह्लाद आदि चार मन्त्री थे। उन्हें धर्म की कोई जानकारी नहीं थी। वे साधु सन्तों से विद्वेष रखते थे। कई आदमी बिना किसी कारण ही सन्तों से ईर्ष्या द्वेष रखते हैं और कर्मोदय से वे उनके शत्रु होते हैं। एक बार उधर अकम्पनाचार्य अपनी शिष्य मण्डली के साथ नगर में पधारे। राजा उनके दर्शन के लिए तैयार हुआ तो वे मन्त्री कहने लगे-"महाराज। ये साधु तुच्छ हैं। भीख मांगकर पेट भरते हैं। इनको कुछ भी ज्ञान नहीं है। इनके पास जाने से कुछ लाभ नहीं।"

राजा ने कहा—"भले ही वे भीख माँगकर पेट भरते हैं और मलिन वस्त्र धारण करते हैं, मगर उनके विचार तो स्वस्थ व उत्तम हैं, उनके पास जाने में हानि क्या है ? यदि कुछ ग्रहण करने का होगा तो ग्रहण कर लेंगे।"

अकम्पनाचार्य बड़े ज्ञानी व भविष्य वेत्ता थे। उन्हें मालूम हुआ कि यहाँ के मन्त्री धर्म विरोधी व संत द्वेषी हैं। अत: जब उन्हें मालुम हुआ कि राजा उनके पास आ रहा है तो उन्होंने अपने शिष्यों को आदेश दिया कि जब राजा और वे मन्त्री आएँ, तब ध्यान में बैठ जाना, मौन रहना। कोई भी उनसे किसी प्रकार का विचार विमर्श नहीं करना"। सब शिष्यों ने मौनव्रत धारण कर लिया और वे ध्यान में बैठ गये। परन्तु, दो मुनि भिक्षार्थ गये हुए थे, अतः उन्हें आचार्य के आदेश का पता नहीं था। राजा दर्शन करने आए, सभी मुनि ध्यान में बैठे हुए थे। तब मन्त्री राजा से कहते हैं कि "देखो ! आपतो दर्शन करने आये हैं और ये ध्यान नहीं खोल रहे हैं। ये कुछ जानते तो बोलते। इन्हें तो कुछ भी आता जाता नहीं है"।

राजा ने मन्त्रियों के कथन पर कुछ ध्यान नहीं दिया और वे वापस चले गये। रास्ते में उन्हें सुकृति मुनि मिल गये। मंत्रियों ने गलत-गलत शब्द कह कर उन्हें चिढ़ाना चाहा, लेकिन उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया और दो-चार ज्ञान की बातें कह कर वे चले गये। इससे मन्त्रियों को बहुत लज्जित होना पड़ा, लेकिन राजा मुनि से बहुत प्रभावित हुआ। उसी समय उस मन्त्री ने सोच लिया कि ये मुनि बोलने में बहुत होशियार हैं, अत: इनका खात्मा करना चाहिए।

इधर जब वे मुनि अपने डेरे पर आये तब आचार्य ने पूछा—तुम्हें रास्ते में राजा व उसके मन्त्री मिले, तब तुमने कुछ उत्तर तो नहीं दिया ? तब उन्होंने कहा कि गुरुदेव, उन्होंने बहुत कुछ गलत कहा तब मैंने उन्हें ज्ञान की थोड़ी बातें बताई। सुकृति मुनि से मार्ग का वृतान्त सुनकर आचार्य ने समझ लिया कि रात्रि को

उपसर्ग होगा। उन्होंने सुकृति मुनि को आदेश दिया कि जहाँ तुमने राजा से वार्तालाप किया है,—वहीं जाकर ध्यान में खड़े हो जाओ। उपसर्ग तो होगा, मगर समभाव से कष्ट सहन करना।

आचार्य के आदेशानुसार सुकृति मुनि वहीं जाकर ध्यान में खड़े हो गये। रात्रि का समय हुआ तो मन्त्री आये और उन्होंने देखा कि यह तो वही साधु है, जिससे कि वार्तालाप हुआ था। उन्होंने मुनि का कत्ल करने के लिए तलवार ऊपर उठाई। वह ऊपर उठ तो गई मगर नीची नहीं हुई। सारी रात उन्हें इसी तरह खड़ा रहना पड़ा। दैवी चमत्कार से वे स्तब्ध रह गये। प्रभात होते ही राजा के पास यह सूचना पहुँची। राजा भी वहाँ तुरन्त आ गये। उन्होंने ज्यों ही तलवार पकड़े हुए मन्त्री का हाथ पकड़ा कि हाथ नीचे आ गया व पैर भी उठने लगे। राजा ने बुरी तरह से उनकी भर्त्सना की। मुनिराज ने उसी समय अपना ध्यान पूर्ण किया और मन्त्रियों को क्षमादान देने का राजा से अनुरोध किया। मुनि के कहने पर राजा ने उन्हें अभयदान तो दे दिया, मगर उसने कहा—"तुम लोग घोर पापी हो। मेरे राज्य में तुम्हारे लिये कोई जगह नहीं है। तुम मेरे राज्य के लिए कलंक हो।"

मन्त्री घूमते-घूमते हस्तिनापुर पहुँचे। वहाँ विष्णु कुमार के भाई पद्मराज का शासन था। राजदरबार में पहुँचकर मन्त्रियों ने राजा से नौकरी की अभिलाषा प्रकट की। उनके साथ वार्त्तालाप करके राजा सन्तुष्ट हो गया। उसने कहा यदि कोई नौकरी चाहते हो तो विशिष्ट कार्य करके दिखाओ और अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दो।

राजा ने अपने एक शत्रु को जीतने का कार्य उनके सुपुर्द कर दिया। उन्होंने आवश्यक सैन्य-सामग्री लेकर शत्रु पर आक्रमण किया और उसे पराजित करके राजा के सामने उपस्थित कर दिया। इस वीरता से प्रसन्न होकर राजा ने कहा कि जो चाहिये सो माँग लो।

मन्त्रियों ने कहा कि—हमारा वर आपके भण्डार में रख दीजिए, उचित समय पर हम माँग लेंगे।

इस प्रकार मन्त्री हस्तिनापुर में रहने लगे। संयोगवश अकम्पनाचार्य भ्रमण करते-करते हस्तिनापुर पहुँचे। भिक्षा के लिए नगर में गये तो मन्त्रियों ने उन्हें पहचान लिया। वे उनसे भयभीत हो गए। उन्होंने सोचा कि राजा भक्त हैं और यदि उन्हें उज्जैन की घटना का पता चल जाएगा तो राजा हमारे ऊपर क्रुद्ध हो जाएगा। ऐसा समय आने से पहले ही इन मुनियों का खात्मा कर देना चाहिये, जिससे प्रतिष्ठा भी बनी रहे।

दुष्ट मन्त्रियों ने कुमंत्रणा करके अपना वरदान माँगा और उसमें सात दिन के लिए राज्य की याचना की। राजा ने अपने वचन का पालन करते हुए राज्य दे दिया।

मन्त्रियों ने एक बड़ा यज्ञ प्रारम्भ किया और श्रावणी पूर्णिमा के दिन सात सौ मुनियों को हवन में देने का निश्चय किया। इससे एक दिन पूर्व एक साधु महात्मा को अपने ज्ञान से यह भावी दुर्घटना विदित हो गई। सहसा उनके मुख से अहो कष्टम्, अहो कष्टम् शब्द निकल पड़े। उन्हें गहरा दुःख हुआ। उन्होंने मुनियों की रक्षा का उपाय सोचा। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि मुनि विष्णु कुमार मुनियों की रक्षा कर सकते हैं। वे राजा के भाई भी हैं और लब्धिधारी भी हैं। उनमें विशिष्ट तेज है। यह सोचकर महात्मा विष्णुकुमार मुनि के पास गये और मुनियों की रक्षा के लिए उन्होंने उनसे अनुरोध किया।

प्रातःकाल होते ही मुनि विष्णुकुमार अपने भाई राजा पद्मराज से मिले। राजा ने उनका खूब स्वागत किया और पूछा कि हमारे योग्य सेवा बताइए। मुनि गम्भीर स्वर में बोले कि तुम्हारे राज्य में क्या हो रहा है? तुम्हें इसकी भी खबर है या नहीं? मुनियों का हवन होने वाला है।

पद्मराज ने कहा कि मुझे बहुत दुःख है, मगर मैं सात रोज के लिए राज्य उन्हें दे चुका हूँ। मैं वचनबद्ध हूँ। छः दिन व्यतीत हो गए, एक दिन शेष रहा है। मगर आप महान् शक्तिशाली हैं। भलीभांति प्रतिकार कर सकते हैं।

मुनि विष्णु कुमार लब्धि के प्रभाव से वामन साधु का रूप धारण करके यज्ञ स्थल पहुँचे। वहाँ यथेष्ठ दान दिया जा रहा था। मुनि ने साढ़े तीन पांव जमीन माँगी तो सात दिन के राजा ने कहा—"तुम साधु हो इसलिए देना नहीं चाहते, मगर इस यज्ञ के कारण तुम्हें निराश भी नहीं करना चाहते, इसके अतिरिक्त तुम महाराज के भाई भी हो। तुम्हें जमीन दी जाती है। नाप लो।" वचन मिलते ही मुनि ने अपने विराट् रूप का प्रदर्शन किया और पूरी पृथ्वी तीन पांव में नाप डाली। आधा पांव जमीन की कमी रह गई। मुनि ने उसकी माँग की। यह दिव्य रूप देखकर वे रो पड़े। उन्होंने अपने अपराध के लिए क्षमा याचना की। इस प्रकार सात सौ मुनियों के प्राणों की रक्षा हुई।

इन दोनों कथाओं में कुछ साम्य है, और कुछ वैषम्य है। दोनों में ही यज्ञ और दान का उल्लेख किया गया है।

परन्तु हमें तो इन कथाओं में निहित लक्ष्य को देखना है। इन कथाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी न किसी समय विषम परिस्थिति आई और घोर संकट उपस्थित हुआ। वह आपति श्रावणी पूर्णिमा के दिन पूरी हुई और इस दिन रक्षा हुई। इसलिए यह त्यौहार रक्षा की देन है।

आज त्यौहार का रूप बदल गया है। ऐसा लगता है कि उसकी आत्मा खो गई है। आज प्रायः ब्राह्मण रक्षासूत्र बांधकर भेंट पा लेते हैं। प्राचीन काल में राखी बंधवाने का अर्थ था, उसकी रक्षा का उत्तरदायित्व लेना। बहनें अपने भाई को राखी बांधकर भेंट पा लेती हैं। बस, भाई का दायित्व पूरा हो जाता है।

राणा सांगा मेवाड़ के शासक थे। उस समय बहादुरशाह ने चित्तौड़ के चारों ओर घेरा डाल दि । मेवाड़ बहादुर शाह का सामना करने में असमर्थ था। तब मेवाड़ की महारानी कर्णावती ने दिल्ली के बादशाह हुमायूँ के पास राखी भेजी और रक्षा की प्रार्थना की। तब हुमायूँ ने सोचा मेवाड़ की महारानी ने मुझे राखी भेजकर भाई बनाया है तो मुझे उसके देश की रक्षा करनी चाहिए।

इसी के साथ वह उसकी रक्षा के लिए उद्यत होता है। तात्पर्य यह है कि प्राचीन काल से ही रक्षा का महत्त्व अति उच्च रहा है। एक बार राखी बंधवा लेने के पश्चात् वह अपने आपको उसके प्रति ही समर्पित करता था और प्राण देकर भी रक्षा करने के कर्त्तव्य का पालन करता था। लेकिन आज रक्षाबन्धन का महत्त्व क्या हो गया है? बहनों की क्या स्थिति है? इससे भाइयों को कोई मतलब नहीं है। जिनके घर में कोई उपार्जन करने वाला नहीं, वे किस अवस्था में अपना जीवन यापन कर रही हैं? इन बातों पर कभी आप विचार करते हैं? यदि आप उनके प्रति सजग नहीं हैं, आप उनकी सहायता नहीं करते तो आपका राखी बंधवाना व्यर्थ ही है। यह तो रक्षा पर्व का लौकिक स्वरूप है। अब थोड़ासा आध्यात्मिक दृष्टि से भी चिंतन कर लेते हैं। हम अनादिकाल से बंधनों से जकड़े हुए हैं। बलि रूपी शत्रु अहंकार का आत्मा पर कब्जा है। अगर आत्मबल रूपी विष्णु प्रकट हो जायें तो हमारे भीतर के समस्त शत्रु पराजित हो जायेंगे। आत्मरूपी बल ही हमारी सहायता करेगा तब ही हमें सफलता मिल सकती है। तब ही हमारी आत्मा की रक्षा हो सकती है।

इस त्यौहार की सार्थकता इसी में है कि हम लगे हुए दोषों व पापों का प्रायश्चित करके और आगे इनसे बचने के लिए सावधान हो जायें। जिस तरह ब्राह्मण आज के दिन रक्षा-बन्धन बांधते हैं, इसी प्रकार आपको भी अपनी आत्मा की रक्षा के लिए कुछ उपाय करना चाहिए।

इस प्रकार रक्षा बन्धन समस्त मानव जाति की रक्षा का सन्देश देता है। माता-पिता, भाई-बहिन, प्राणीमात्र की रक्षा के लिए हमें हमेशा ही तत्पर रहना चाहिए। तब ही हमारा रक्षापर्व मनाना सफल होगा और आपकी आत्मा की रक्षा भी हो जाएगी।

9 अगस्त, 1987

संस्कारित जीवन हो

मैं संस्कारों के सम्बन्ध में बहुत बार कहता हूं और वैसे भी देखा जाए तो मेरा वास्तविक उद्देश्य संस्कार युक्त जीवन का संदेश देना है। मैं चाहता हूं जो पिछली पीढ़ी है, उसे बदल कर नवीन पीढ़ी के अन्दर इस प्रकार के संस्कार रूपी बीज डालें कि वह पौधा संस्कार की महक से लहलहा उठे।

आज की पीढ़ी किस ओर जा रही है। उसके जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है। वह अपनी जिन्दगी के प्रारम्भिक चरणों में ही गुमराह हो जाती है। इसका परिणाम होता है कि वह अपने जीवन का अर्थ नहीं समझ पाती और उनका सम्पूर्ण जीवन भटकने में ही समाप्त हो जाता है। यह सब क्यों होता हैं? कभी सोचा है आपनें? यह सब होता है संस्कारों के अभाव में। एक संस्कार युक्त व्यक्ति के जीवन में ऐसा समय कभी नहीं आ सकता। उसका जीवन तो एक महकते गुलाब की भांति खुशबू से परिपूर्ण ही होगा।

जोधपुर के महाराजा यशवन्त सिंह जी किसी राज्य के ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए निकले, लेकिन उनकी सेना निरन्तर कम होती जा रही थी। यह देख महाराजा यशवन्त सिंह जी वापिस मुड़ने के लिए तैयार हो गये और सेना की जो छोटी सी टुकड़ी बची थी, वे उसे लेकर वहां से लौट गए। इधर महारानी को यह पता चला कि महाराज युद्ध में से पीठ दिखा कर चले आ रहे हैं, तो उन्होंने नगर रक्षकों को आदेश दिया की नगर के तमाम दरवाजे बन्द कर दो और जब तक मेरा आदेश न हो द्वार न खोलें। उन्होंने वैसा ही किया।

इधर महाराजा आते हैं और वे द्वारपाल से दरवाजा खोलने के लिए कहते हैं तो वह कहता है कि आप कौन है? अभी महाराजा युद्ध के लिए गये हुए हैं और राज्य शासन महारानी के हाथ में है। उनका आदेश है, दरवाजा नहीं खोलना। तब महाराजा कहते हैं कि मैं तुम्हारा महाराजा यशवन्त सिंह बोल रहा हूं, तुम दरवाजा खोल दो।

तब द्वारपाल कहता है कि आप कोई शत्रु भी हो सकते हैं और हमसे छल करके महाराजा होने का ढोंग कर सकते हैं। हमारे महाराजा तो युद्ध में गए हुए हैं, वे इतने कायर नहीं हैं कि युद्ध में पीठ दिखाकर भाग आएं।

संस्कारित जीवन हो

मैं संस्कारों के सम्बन्ध में बहुत बार कहता हूं और वैसे भी देखा जाए तो मेरा वास्तविक उद्देश्य संस्कार युक्त जीवन का संदेश देना है। मैं चाहता हूं जो पिछली पीढ़ी है, उसे वदल कर नवीन पीढ़ी के अन्दर इस प्रकार के संस्कार रूपी बीज डालें कि वह पौधा संस्कार की महक से लहलहा उठे।

आज की पीढ़ी किस ओर जा रही है। उसके जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है। वह अपनी जिन्दगी के प्रारम्भिक चरणों में ही गुमराह हो जाती है। इसका परिणाम होता है कि वह अपने जीवन का अर्थ नहीं समझ पाती और उनका सम्पूर्ण जीवन भटकने में ही समाप्त हो जाता है। यह सब क्यों होता हैं? कभी सोचा है आपनें? यह सब होता है संस्कारों के अभाव में। एक संस्कार युक्त व्यक्ति के जीवन में ऐसा समय कभी नहीं आ सकता। उसका जीवन तो एक महकते गुलाव की भांति खुशबू से परिपूर्ण ही होगा।

जोधपुर के महाराजा यशवन्त सिंह जी किसी राज्य के ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए निकले, लेकिन उनकी सेना निरन्तर कम होती जा रही थी। यह देख महाराजा यशवन्त सिंह जी वापिस मुड़ने के लिए तैयार हो गये और सेना की जो छोटी सी टुकड़ी वची थी, वे उसे लेकर वहां से लौट गए। इधर महारानी को यह पता चला कि महाराज युद्ध में से पीठ दिखा कर चले आ रहे हैं, तो उन्होंने नगर रक्षकों को आदेश दिया की नगर के तमाम दरवाजे बन्द कर दो और जब तक मेरा आदेश न हो द्वार न खोलें। उन्होंने वैसा ही किया।

इधर महाराजा आते हैं और वे द्वारपाल से दरवाजा खोलने के लिए कहते हैं तो वह कहता है कि आप कौन है? अभी महाराजा युद्ध के लिए गये हुए हैं और राज्य शासन महारानी के हाथ में है। उनका आदेश है, दरवाजा नहीं खोलना। तव महाराजा कहते हैं कि मैं तुम्हारा महाराजा यशवन्त सिंह बोल रहा हूं, तुम दरवाजा खोल दो।

तव द्वारपाल कहता है कि आप कोई शत्रु भी हो सकते हैं और हमसे छल करके महाराजा होने का ढोंग कर सकते हैं। हमारे महाराजा तो युद्ध में गए हुए हैं, वे इतने कायर नहीं हैं कि युद्ध में पीठ दिखाकर भाग आएं।

तो महाराजा कहते हैं—"तुम मुझे द्वार के इस छिद्र से देख लो, मैं यशवन्त सिंह ही हूँ।

लेकिन, जब महारानी आज्ञा नहीं देती हैं तो वे सात दिन तक राज्य के बाहर ही भूखे-प्यासे बैठे रहते हैं। राजमाता को दया आ जाती हैं। वह कहती है "बेटी, उसे आये हुए सात रोज हो गये हैं, अब तो तुम दरवाजा खुलवा दो। वह भूखा-प्यासा बैठा है।"

महारानी कहती है—"जैसी आपकी आज्ञा।" और वह दरवाजा खोलने का आदेश देती है। महाराजा प्रवेश करते हैं तो रानी मुंह फेर लेती है, तब महाराजा कहते हैं—"मैं सात-दिन तक भूखा-प्यासा बैठा रहा और अभी भी तुम मुँह फेर रही हो, तुम मेरा अपमान कर रही हो।" तब महारानी शेरनी की भांति गरजकर कहती है कि "मान सम्मान को क्षत्रिय जानते है। तुम क्या जानो ? तुम्हारे मुख से यह शब्द सुन कर बहुत आश्चर्य होता है। जो युद्ध में पीठ दिखाकर आए, उसके लिए क्या सम्मान, क्या अपमान ?"

तब राजा कहता हैं "अगर मैं मर जाता तो क्या तुम सुखी रहती ?"

रानी ने कहा—"राजन्। तुम्हें मरना आता ही कहां हैं ? तुम तो वैसे ही मरे हुए हो। क्योंकि जो जीवित होता है, वह शत्रु को युद्ध में पीठ दिखाकर नहीं आता, वरन् आवश्यकता पड़ने पर वीरता पूर्वक मृत्यु का वरण करता है।"

उदयपुर के महाराणा भोपालसिंह जी के चाचाजी, चतरसिंह जी महाराज जो अध्यात्म-निष्ठ कवि हुए हैं उन्होंने मेवाड़ी भाषा में मृत्यु के विषय में लिखा है—

मरणो जाणणों या मनखाँ मोटी बात
मरणो-मरणो सब केवे, मरे सभी नर-नारी
मरवा पेली जो मर जाए, तो बलिहारी।

मृत्यु को समझना बड़ा कठिन है। सभी कहते हैं, हमें मरना है, हमें मरना है, लेकिन वास्तव में देखा जाये तो मरने से सभी कांप जाते हैं। यद्यपि मरना तो सभी को है। जो मृत्यु से पहले मरता है, उसकी बलिहारी है। लेकिन मरने का यह अर्थ नहीं है कि हम काशी जाकर करवत ले लें, तथा जरा सा उपसर्ग आने पर आत्म-हत्या करलें, जहर खालें या ट्रेन के नीचे सो जाएं।

शास्त्रकारों ने कहा है कि यदि कोई व्यक्ति स्वस्थ है और वह संथारा कर लेता है, तो वह भी सही रूप में संथारा नहीं होता है। हमें संथारा प्रत्याख्यान भी तभी करना चाहिए, जब हमें पता चले कि हमारी मृत्यु होने वाली है। अब जीवन बचने की कोई आशा नहीं है। ऐसे समय में ही संथारा करना चाहिए।

रानी इसी प्रकार कहती जा रही थी। तब राजमाता ने कहा—"बहुरानी, बहुत हो गया है। बेटा सात दिन से भूखा है, उसके लिए खाने का प्रबन्ध करो।

रानी खाना बनाने में लग गई। राजमाता और महाराजा यशवन्त सिंह बैठे हुए थे। रानी हलवा बना रही थी। हलवा बनाते समय खुरपी की आवाज हो रही थी ऐसी खुरपी की आवाज राजमाता ने सुनी तो उन्होंने व्यंग्य के रूप में वहू से कहा कि "वहू, युद्ध में तलवारों की आवाज सुनकर तो मेरा बेटा भागकर आया है। अब यहां से खटा-खट की आवाज सुनकर कहां जाएगा ?"

यह बात महाराजा को चुभ गई। वे उसी क्षण उठे और माता के चरणों में गिर पड़े। माता से अपनी कायरता के लिए माफी मांगने लगे, "माँ मुझे क्षमा करदो और अधिक जलील मत करो।"

तब माँ कहती है "बेटा" वास्तव में यह तेरी गलती नहीं है, यह गलती वास्तव में मेरी ही थी जो कि युद्ध में पीठ दिखाकर भाग आया। एक बार मैं तुझे दूध पिला रही थी कि तेरे पिताजी को कुछ काम था, और मैं चली गयी। तू बहुत रोने लगा। पास ही में दासी खड़ी थी, उसने तुझे अपना दूध पिला दिया। मुझे जब पता चला तो मैंने तुरन्त तेरे गले में अगुंली डालकर उल्टी करवा दी। लेकिन उस दासी के दूध का थोड़ा-सा अंश शायद तुम्हारे पेट में रह गया, जिससे तुम्हारे अन्दर कायरता आ गई। अगर तुम क्षत्राणी का दूध पीते तो इस तरह कायर नहीं होते। पुत्र, मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ कि अब तुम्हारी हार नहीं हो सकती। तुम अब विजयश्री लेकर ही लौटोगें क्योंकि अब दासी के दूध का असर समाप्त हो गया है। अब तेरी रगों में मेरा ही दूध है।"

घटना बड़ी मार्मिक है। पहले की माताएं दूध के लिए कितनी सजग रहती थी और आज की माताएं बच्चों को अपना दूध पिलाने में शर्म महसूस करती है। वे बच्चों को ऊपर का दूध पिलाती है।

विचारने योग्य बात यह है कि आज की माताएं अपने बच्चे के प्रति कितनी सजग रहती है? संस्कार देना तो दूर, आजकल की माताएं अपने बच्चों को एक वर्ष तक भी अच्छी तरह पालने का समय नहीं निकाल पाती। बोतल में दूध भरकर उसे हाथ में पकड़ा देती हैं। बच्चा अपने आप दूध पी लेता है, या नौकर रख देते हैं, उसके लिए। देखिए, उन्हें दूध पिलाने तक का भी समय नहीं है। संस्कार की बात तो बहुत दूर है।

वह राजमाता भी एक माँ थी। वह अपने बच्चे के प्रति कितनी सजग थी ? उसके मुँह में अंगुली डालकर उसे कै करवाती है। यदि संस्कार अच्छे होतो बालक कभी भी भय नहीं खाता है। उसे किसी बात का डर नहीं रहता है।

आजकल की माताएं संस्कार तो देती हैं लेकिन किस तरह के देती है ? जिस तरह के कार्य वह स्वयं करती हैं। सिनेमा, टी.वी. व लड़ाई-झगड़े स। आजकल ऐसी-ऐसी फिल्में देखते हैं, जिसे मां-बाप को अपने बेटे-बहू के सामने नहीं देखनी चाहिए।

लेकिन शर्म तो आजकल किसी में रही ही नहीं हैं। एक फिल्म को जिसे मां-बाप, पत्नी-पति, 20 वर्ष के नवयुवक, 13 वर्ष की लड़की सभी एक साथ देखते हैं। बताईए इसका परिणाम क्या होगा ? पहले तो वे अपने दायित्व को समझ नहीं पाते हैं, फिर पानी सिर पर से गुजर जाने के बाद पश्चाताप करते हैं, जबकि उसका कोई अर्थ नहीं रहता है। आज एक पिता को अपने पुत्र को कुछ कहने का अधिकार नहीं रहा। जरा सा कुछ कह दिया कि जबान लड़ाएगा या धमकियां देगा कि मै यह कर लूंगा, वह कर लूंगा। यह सब सुसंस्कारों के अभाव के कारण होता है। इस स्थिति पर गम्भीरता पूर्वक विचार करें और बच्चों में शुरू से ही सुसंस्कारों का बीजारोपण करें ताकि हमें दुःखद परिणाम देखने नहीं पड़े।

10 अगस्त, 1987

"यह मानव जीवन दुर्लभ है। देवता भी इसके लिये तरसते हैं, क्योंकि इसी से आत्म-कल्याण संभव है। हमने असीम पुण्योदय से यह मानव जीवन पाया है, क्या हम इसे यों ही गंवा देना चाहते हैं ? हम वीत-राग-वाणी को जीवन में उतार कर आत्मकल्याण के मार्ग को प्रशस्त करें, तभी यह जीवन सार्थक है।"

दुर्लभ मानव जीवन

अनन्त पुण्य के उदय से आपको मानव शरीर मिला है। जो उम्र चली गई, वह तो व्यर्थ गई, लेकिन जो जीवन बचा है, उसे सम्भालिये। मृत्यु की घड़ियों में साथ जाने वाला केवल धर्म ही है। जिन भौतिक पदार्थों को आप एकत्रित कर रहे हैं, वह आपके साथ जाने वाला नहीं है। उन्हें यहीं पर छोड़कर जाना पड़ेगा। जरा सोचिए कि आपने कौनसी चीज बनाई है ? क्या कमाया है आपने ? जीवन में जाते समय कितना साथ ले जाएंगे ? चौबीस घण्टे भौतिक साधनों की कमाई कर रहे हैं। आत्मा की उपेक्षा हो रही है।

ध्यान रखिए ! आपके साथ वही जाएगा जो आपने अपनी आत्मा के लिए कमाया है। पुण्योपार्जन, साधना, धर्म, जीवन में होगा तब ही वह काम आएगा। सांस का भरोसा नहीं है। कब आयु समाप्त हो जाए, कह नहीं सकते। कोई सौदा तौलते लुढ़क रहा है और कोई सिगरेट का कश खींचते ढेर हो रहा है। आये दिन आप अपनी आंखों से देख रहे हैं, फिर भी आप सचेत नहीं हो रहे ?

जो साधना कार्य हैं, वह तुरन्त करिए। क्योंकि बड़े पुण्य योग से ही मनुष्य जीवन का यह अवसर मिलता है। यह मन बहुत चंचल है, मन पर नियन्त्रण करना कठिन है, लेकिन यदि मन पर नियन्त्रण पा लिया तो साधना भी आसान बन जाएगी। वीतराग भगवन्तों के वचनों का एक अंश भी हमारे जीवन में उतर जाए तो हमारा जीवन परिवर्तित हो जाएगा। इसके लिए आवश्यकता है—सम्यक् साधना की, जो मनुष्य जीवन में ही सम्भव हो सकती है। यह जीवन बड़ा अनमोल है। यह बार-बार नहीं मिलने वाला है। यदि एक बार रास्ता मिल जाने पर भी छोड़ दिया तो वह पुनः मिलने वाला नहीं है। जागृत बनो। पुरुषार्थ पूर्वक निष्काम भाव से साधना के मार्ग पर अपने दृढ़ कदम बढ़ाओ, आपका जीवन सफल बन जाएगा।

अपने जीवन के अन्तिम समय में एक चोर अपने पुत्र को बुलाकर अपनी सारी शिक्षा दे देता है। साथ में वह यह शिक्षा भी देता है कि तुम इस बात का ध्यान रखना कि तुम्हारे कानों में महावीर के शब्द नहीं पड़ें। पुत्र ने अपने पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर ली, क्योंकि वह उसके पिताजी की अन्तिम इच्छा भी थी और तत्क्षण ही वह यह प्रण कर लेता है कि मैं महावीर की वाणी नहीं सुनूंगा।

इधर पिता का देहावसान हो जाता है और पुत्र अपना व्यवसाय शुरू कर देता है। एक दिन वह चोरी करके जा रहा होता है, उसी समय महावीर दिखाई पड़ते हैं, जो विशाल धर्म सभा को अपना अमृत तुल्य सन्देश दे रहे थे। वह अपने कानो में अंगुली डालकर तेज दौड़ता चला जाता है। उधर कुछ सिपाही उसे पकड़ने के लिए पहुंचते हैं। वे उसका पीछा करते हैं, लेकिन वह बच जाता है। भागते-भागते उसके पैरो में कांटा लग जाता है। कांटा निकालने को वह रुकता है तभी महावीर के वचन उसके कानों में पड़ते है कि देव कौन होते है ? कहाँ रहते हैं व जिनके पैर जमीन पर नहीं टिकते और जिनके शरीर से दुर्गन्ध नहीं आती है, जो पलक नहीं झपकते हैं आदि।कथा विस्तृत है, संक्षेप में अभयकुमार उस चोर को पकड़ने का वीड़ा उठाते हैं। उसका पीछा करके वे उसके निवास स्थान का पता लगाते हैं। उन्होंने सोचा कि इसे किसी तरह पकड़ना चाहिए। लेकिन उसे यह महसूस न हो कि वह पकड़ा गया है। जब वह घर पहुंच गया तो उसे राज्य सभा में आमंत्रित किया गया। उसे षट्रस भोजन कराया गया, अच्छे कपड़े दिए गए और फिर कुछ नशे की चीज दे दी। उसके लिए एक सुसज्जित कमरे का चयन करके उसे वहां सुला दिया गया। उसके लिए जिस तरह स्वर्ग में देवता के लिए अप्सराएं रहती हैं, उसी तरह उसके लिए परिचारिकाएं रखी गयी।

कुछ समय बाद में जब उसका नशा खत्म होता है, तब वह देखता है कि यह क्या चमत्कार हो गया। उसने देखा कि कहीं मेरा पुनर्जन्म तो नहीं हुआ है। उधर राजा उससे चोरी कबूल करवाना चाहते हैं। इसलिए उन परिचारिकाओं से कहते हैं कि जब यह उठे तो तुम यह कहना कि नाथ ! आपने कैसे सुकर्म किए है कि आपकी सेवा का हमें अवसर मिला है।

अचानक ही यह देखकर उसे महावीर की वाणी जो कि उसने सुनी थी, उसके ध्यान में आई की देवता के पैर जमीन पर नहीं टिकते, उनके शरीर से दुर्गन्ध नहीं आती और उनकी माला कुम्हलाती नहीं है।

तब उसने सोचा कि कहीं मेरे साथ धोखा तो नहीं हो रहा है। फिर उसने सोचा कि मैंने महावीर के चन्द शब्द सुने जिसके कारण ही मैं बच गया। यदि मैं उनकी सम्पूर्ण वाणी सुन लूं तो मेरा सम्पूर्ण जीवन ही बदल जाय। तब वह कहता है कि मैंने पिछले जन्म में बहुत पुण्य व सुकर्म किए हैं, जिनसे मुझे यह देव योनि मिली है। तब राजा सोचता है कि यह तो अपने आपको देवता मान रहा है और कह रहाहै कि पिछले जन्म के पुण्य योग से मुझे यह जीवन मिला है।

कहने का भाव यह है कि वीतराग की वाणी हमारे जीवन में उतर जाये तो हमारे जीवन का कल्याण हो जाए व हमें चरम् सुख की प्राप्ति हो सकती है। वीत-राग भगवन्त ने कर्म-मुक्ति व कर्म साधना का विश्लेषण किया है कि जीव अनन्त

काल से भ्रमण कर रहा है, जन्म-मरण के चक्कर में अनादिकाल से भटक रहा है। फिर भी हम जागृत नहीं हो रहे हैं, सचेत नहीं हो रहे हैं।

प्रश्नव्याकरण सूत्र में कहा गया है कि हमारे तीर्थंकरो ने केवल ज्ञान के बाद ही उपदेश दिया। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि उन्होंने ऐसा क्यों किया? उनका कल्याण तो हो चुका था, किन्तु उन्हें सम्पूर्ण जगत् का कल्याण भी अभीष्ट था।

सव्वजग जीव रक्खणं द्यट्ठयाए पावंयणं भगवया सुकहियं ।

ध्यान देने योग्य वात यह है कि वे मनुष्यों को दुष्कृत्यों से हटाकर सुपथ पर लाना चाहते थे। उनका जीवन परोपकार के लिए था, वे स्वार्थी नहीं थे। उन्होंने सम्यक् दृष्टि से हमारे जीवन में अनुकम्पा भरनी चाही ताकि हम अपने जीवन के मूल उद्देश्यों को प्राप्त कर सकें। उन्होंने जो जीवों को उपदेश दिया है, वह संसार के प्राणी मात्र की रक्षा व कल्याण के लिए दिया।

आज आवश्यकता है इस वात की कि उन्होंने हमें जो वीतराग वाणी दी है, हम उसके प्रति श्रद्धा रखें व उसे अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करें, तब ही हमारे जीवन का कल्याण होगा व हमारा जीवन सार्थक होगा।

198712 अगस्त



"सम्यग्दृष्टि व्यक्ति का जीवन तनाव रहित होता है। आज जितने तनाव और संघर्ष परिलक्षित हो रहे हैं, यह मिथ्या दृष्टि के कारण। हम शान्ति की खोज में बाहर भटक रहे हैं, भौतिक साधनों में उसे खोज रहे हैं, किन्तु वह उनमें कहीं नहीं मिलती। हम अन्तर्मुखी होकर सम्यग्दृष्टि बनेंगे तो चिर स्थाई शान्ति को प्राप्त कर सकेंगे।"

सम्यग्दृष्टि जीवन

हम सम्यग्दृष्टि की चर्चा कर रहे हैं। उसके स्वरूप के सम्बन्ध में विभिन्न रूपों में व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है। वस्तुतः जो सम्यग्दृष्टि वाला व्यक्ति होता है, वह चिन्तनशील, मननशील होता है। जो अपने जीवन की गहराईयों को नापने वाला होता है। मनुष्य जड़ जगत् से परे चैतन्य जगत् की भी थाह लेने चलता है। आज मनुष्य ऐसी जगह खड़ा है, जहां एक ओर पशुत्व भावना है, वहाँ दूसरी तरफ देवत्व भावना है। इन दोनों में जीवन झूला निरन्तर ऊँचा-नीचा होता रहता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति सम्यग्दृष्टि वाला है, जो विवेकवान व जागृत है, उसे वह पाप नहीं लगेगा, क्योंकि वह उस गलती के लिए पश्चाताप, मनन, चिन्तन करेगा। मनुष्यों को जो भी ज्ञान प्राप्त होता है, अधिकांश इन्द्रियों द्वारा ही नहीं वरन् मन के द्वारा भी उपलब्ध होता है।

सम्यग्दृष्टि को जो ज्ञान प्राप्त होता है, वही ज्ञान कहलाता है। मिथ्यादृष्टि के ज्ञान को शास्त्र की दृष्टि से अज्ञान कहा गया है। कोई रूप सामने विद्यमान है, उसे मिथ्यादृष्टि भी देखता है और सम्यग्दृष्टि भी, परन्तु मिथ्यादृष्टि का देखना अज्ञान और सम्यग्दृष्टि का देखना सम्यग्ज्ञान है। कहने को तो कह दिया जाता है कि एक को अज्ञान व दूसरे को ज्ञान है, किन्तु इस विभेद कल्पना की पृष्ठभूमि में क्या रहस्य हैं, यह भी समझना होगा।

यदि मिथ्यादृष्टि का ज्ञान अज्ञान है तो उसका सत्य क्या है? उसकी अहिंसा क्या अहिंसा है? उसका चरित्र क्या चरित्र है? मिथ्यादृष्टि का आचार अज्ञान-मूलक है, अतएव वह सम्यक् आचार नहीं है। चूंकि मिथ्यादृष्टि की अहिंसा/सत्यता आदि संसार वृद्धि के लिए या स्वार्थ पूर्ति के लिए ही होती है, अतः वे अज्ञान की कोटि में ही आते हैं। सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि के विचार और आचार में बहुत अन्तर होता है। व्यवहार में हम देखते हैं कि एक ही कार्य के प्रति भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के अलग-अलग विचार होते हैं।

एक व्यक्ति को फांसी की सजा दी जाती है न्यायाधीश सोचता है, पश्चाताप करता है कि मेरे द्वारा ऐसा कार्य हो रहा है कि जिससे हिंसा हो रही है। क्या

करूं ? मैं इस आसन पर बैठा हूँ । मुझे न्याय करना पड़ता है । यदि इस तरह के भाव उसके हों तो उसे उस हत्या का पाप उतना नहीं लगेगा । उधर जो जल्लाद उसे फांसी लगा रहा है, वह भी सोचता है कि मैं ऐसी नौकरी पर हूँ कि मैं एक जीव की हत्या कर रहा हूँ । यह नौकरी ही ऐसी है, इसलिए ऐसा कर रहा हूँ वरना मैं ऐसा कभी नहीं करता । ऐसी भावना उत्पन्न रहती है तो उसे भी उस हत्या का पाप नहीं लगता । लेकिन जहाँ फांसी लगाई जा रही है, वहाँ बहुत जनता इक्कट्ठी हो रही है । उनमें से कुछ तो यह बोलते हैं कि पता नहीं बेचारे के कौनसे पाप कर्मों का उदय हुआ कि उसके जीवन में जो यह दिन आया । इसके विपरीत कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो यह कहते हैं कि फांसी जल्दी लगाओ । तो इसके अन्दर जितना पाप फांसी लगाने वाले को नहीं लगा, जितना पाप फांसी की सजा देने वाले को नहीं लगा, उतना केवल देखने वालों में से हत्या का अनुमोदन करने वालों को लगा । विचारों-विचारों में भिन्नता से पाप और पुण्य होता है । इसलिए ही मिथ्यादृष्टि के ज्ञान को विपरीत ज्ञान कहा जाता है । कहने का तात्पर्य यह है कि उसके ज्ञान का विपर्यास उसकी दृष्टि के विपर्यास से ही होता है ।

आवश्यकता है—जीवन में सम्यग्दृष्टि लाने की । सम्यग्दृष्टि का जीवन ही तनाव रहित जीवन होता है और वही जीवन को शांति से भर सकता है । आपके जीवन में पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक आदि कई प्रकार के तनाव है, संघर्ष हैं । इन संघर्षों की शृंखला निरन्तर बढ़ती जा रही है । यह सब हो रहा है संस्कारों के अभाव के कारण । घर घर अच्छे संस्कार नहीं दिये जाते हैं । इससे बच्चों में धार्मिक संस्कार नहीं आ पाते हैं । विनय का तरीका आपके बच्चों को मालूम नहीं है, धर्म का स्वरूप जानते नहीं और हम निकले हैं शान्ति की खोज में । मैं कहता हूँ परिवार में यदि एक भी संस्कार सम्पन्न व्यक्ति होता है तो वह पूरे परिवार को धार्मिक रंग में रंग देता है ।

एक लघुवयी संत गोचरी के लिए एक सेठजी के घर जाते हैं । सेठ जी बड़े अविनयी थे, लेकिन सेठजी की पुत्रवधु बहुत ही समझदार व विचक्षण थी । उनकी पुत्र वधु ने सन्त को आहार बहराया । संत नव दीक्षित थे । उस पुत्र वधु ने कहा—"अजे सवार" अर्थात् अभी तो सवेरा हुआ है । संत ने जवाब दिया— "काल न जावणो' अर्थात् काल को नहीं जाना । पता नहीं कब दावत आ जाय और मुझे जाना पड़े । संत ने पूछा, "तुम्हारे घर का आचार कैसा है ?" तो पुत्रवधु ने जवाब दिया—"मुझघट बासी जीमणा" अर्थात् मेरे यहाँ तो बासी है सभी कुछ, जो कुछ पूर्व जन्म में संचित किया था, उसका उपभोग कर रहे हैं, अभी कुछ भी धर्मध्यान व धर्म साधना नहीं होती है ।

तब संत ने पूछा--

किता वर्ष में तुझ पति, किता वर्ष में पूत ।
सुमरो किता वर्ष में, तुझ घर केवो सूत ॥

पुत्रवधु ने जवाब दिया—

आठ वरस में मुझ पति, बारह वर्ष में पूत ।
सूसरो झूले पालणो, मुझ घर एवो सूत ॥

सेठजी जो कि पास ही खड़े वार्तालाप सुन रहे थे । उनकी क्रोधाग्नि भड़ उठी । संत के जाने के बाद वे अपनी बहू को बहुत अविनय से बोले--"तुम्हें बिल्कुल शर्म नहीं आती ? तुम्हें क्या यह भी पता नहीं कि साधु के साथ किस तरह से बातें की जाती है ?

तब बहू बड़े ही विनय भरे शब्दों में कहती है कि पिताजी आपको अगर किसी प्रकार की शंका थी तो आपको उसी समय पूछ लेना चाहिए था । खैर अब भी कुछ नहीं हुआ है । आप वहां गुरुदेव के पास जाओ और उनके सामने अपनी शंका रखो । वे आपकी शंका का समाधान करेंगे । वे तत्काल ही स्थानक में गए और उत्तेजना पूर्वक बोलने लगे कि आप कैसे-कैसे साधु रखते हो, जिनमें तुच्छ ज्ञान भी नहीं है ।"

तब गुरुदेव कहते हैं—"सेठ जी ! थोड़े शान्त हो जाईए । अभी आपके संशय का समाधान हो जाएगा । फिर उन्होंने अपने शिष्य को बुलाया और उनसे पूछा, "क्या तुम इनके घर गये थे ? तुम्हारी वहां किसी से कोई बात हुई ? तब शिष्य ने कहा, हां गुरुदेव ! मैं इनके यहां गया था और इनकी पुत्रवधु बहुत ही विचक्षण व बुद्धिमान है । मेरे नव दीक्षित कपड़े देखकर जाना, मैं नव दीक्षित हूं व अल्पवय हूं, तो उसने कहा कि "अजे सवार" यानि अभी तो आपके जीवन का सवेरा हुआ है, अभी तो मध्यान्ह और सांयकाल बाकी है । उसके कहने का यह अभिप्राय था कि आपने उषाकाल में ही संयम ग्रहण क्यों किया ? तब मैंने कहा "काल न जावणो" काल को नहीं जाना । पता नहीं कब बुलावा आ जाय । अतः जितनी जल्दी साधना हो जाए उतना ही अच्छा है ।

फिर मैंने सहज ही उससे यह प्रश्न कर दिया कि तुम्हारे घर का आचार कैसा है ? तो उसने कहा—"मुझ घर जीमण बासी" अर्थात् पूर्वभव की कमाई, पुण्य कर्म चल रहे हैं । अभी कोई नयी धर्म साधना नहीं हो रही है । यदि इस जन्म में धर्माराधना होती तो वह ताजा भोजन कहलाता ।

उम्र पूछने पर हर एक की उम्र बताई कि ससुर तो अभी पालणे में झूल रहे हैं, अर्थात् अभी उन्होंने धर्माराधना शुरू नहीं की है । पति आठ वर्ष से ही धर्मध्यान

करने लगे हैं और बच्चे में शुरू से ही अच्छे संस्कार पड़े हैं। इसलिए उसकी उम्र 12 वर्ष की बताई।

सेठजी की शंका का समाधान हुआ और वे अपनी पुत्र वधू के बुद्धि कौशल व धार्मिक प्रवृति पर बेहद प्रसन्न हुए और उसी समय सेठजी ने धर्ममय जीवन जीने का संकल्प किया।

यह तो दृष्टान्त मात्र है, लेकिन आप अपने जीवन पर विचार करें कि आपका जीवन कितना साधना में लगा है? हमें क्या करना चाहिए? हमारा क्या उद्देश्य है? यह विचारने का प्रश्न है। हमारा जितना जीवन साधना में लगा है, वही हमारा सार्थक जीवन है, बाकी जीवन तो पशु के समान है। जीने को तो पशु-पक्षी भी जीते हैं, फिर हमारे व उनके जीवन जीने में क्या फर्क है? यही विचारने का विषय है। यदि आप धर्म साधना में लीन रहेंगे तो आपका शेष जीवन सफल बनेगा।

13 अगस्त, 1987

हम प्रति वर्ष झण्डा फहराकर स्वतंत्रता दिवस मनाने की औपचारिकता निभाते हैं, लेकिन क्या हम आज भी पूरी तरह स्वतंत्र हो पाये है ? क्या हम आर्थिक और सांस्कृतिक गुलामी से मुक्त हो पाये हैं ? क्या हम राजनीतिक आजादी के इन चालीस वर्षों में राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण कर सके हैं ? क्या हमारा राष्ट्रीय चरित्र दिन पर दिन खोखला होता नहीं जा रहा हैं ?

"क्या हम स्वाधीन हैं ?"

जागरण दो प्रकार का होता है। द्रव्य जागरण और भाव जागरण। द्रव्य जागरण का अर्थ है शरीर अथवा भौतिक तल पर जीना। संसार में जितने भी कार्य होते हैं हम उनके प्रति सजग रह लेते हैं। लेकिन स्वयं की आत्मा के प्रति हम जागृत नहीं होते हैं। इसी कारण वीतराग वाणी ने एक ही सन्देश—उपदेश दिया है, वह है भाव जागरण का। मनुष्य, जागृत होओ। तुम कब तक सोते रहोगे ? यह समय सोने का समय नहीं है। जैसे हम शरीर के प्रति जागृत रहते हैं, उसी प्रकार यदि हम आत्मा के प्रति भी जागृत रहें तो हमारा जीवन सफल बन सकता है। यह भाव जागरण है।

लेकिन, हम आत्मा के प्रति नहीं, शरीर के प्रति सजग रहते हैं। यदि हमें एक मच्छर काट जाए तो हम किस तरह से विचलित हो जाते हैं। लेकिन, कभी गहराई से सोचा है कि कषाय, लोभ, लालच, द्वेष के कीटाणुओं ने मिलकर हमारी आत्मा को छलनी बना दिया है ? फिर भी हमारा ध्यान उसकी तरफ नहीं जाता है। अनन्त काल से हमारी आत्मा को कर्म रूपी बेड़ियों ने जकड़ रखा है। फिर भी हम अपनी सुरक्षा नहीं कर रहे हैं। हमारी आत्मा अनन्त काल से परतन्त्र बनी हुई है।

आज का दिन स्वतन्त्रता दिवस के रूप में मनाया जाता है। लेकिन बन्धुओं ! विचार करो कि क्या वास्तव में स्वतन्त्रता मिल गई है ? मेरी दृष्टि से तो आपको अभी तक पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं मिली है। क्योंकि आप आज भी सांस्कृतिक व आध्यात्मिक दृष्टि से स्वतन्त्र नहीं हैं।

आज कुछ गहन अध्ययन करें तो महसूस होगा कि आप पहले की अपेक्षा अधिक परतन्त्र हैं, क्योंकि पहले तो आप केवल शासन की दृष्टि से ही पिछड़े हुए थे, लेकिन आज तो आप जीवन के अनेक क्षेत्रों में पिछड़े हुए हैं।

आज भी हमारे यहाँ शासन व शासित की खाई गहरी होती जा रही है। जो शासन करते हैं वे बड़े हैं और अपनी मनमानी कर रहे हैं और जो शासित हैं, उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता है। तो बताइए आप कहाँ से स्वतन्त्र हुए ? देखा जाए तो आज का प्रत्येक नागरिक भयभीत है, उसे बाहर निकलने में ही डर लगता है।

जहाँ तक संस्कृति का प्रश्न है, देश आज भी स्वतन्त्र नहीं है। हमारे यहाँ लम्बे समय तक विदेशियों ने शासन किया और हम उनसे शासित रहे। इसी कारण भारतीय अंग्रेजों को बड़ा व अपने को हीन समझने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि उनका रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा आदि सब कुछ अच्छा समझा जाने लगा। भारतीयों ने इसका अनुकरण किया और उसी में अपना गौरव समझा। इस तरह हमारा देश सांस्कृतिक दृष्टि से भी गुलाम हो गया। यद्यपि विदेशियों के जाने से राजनीतिक गुलामी दूर हो गई, परन्तु सांस्कृतिक गुलामी भारतीयों के रगों में प्रवेश कर गयी, वह आज तक भी दूर नहीं हो सकी। जब तक हम सांस्कृतिक दृष्टि से स्वतन्त्र नहीं होंगे तब तक हम स्वाधीन नहीं हो सकते हैं।

दूसरा प्रश्न है कि क्या हम आध्यात्मिक दृष्टि से स्वतन्त्र हैं, आध्यात्मिक दृष्टि से स्वतन्त्रता का अर्थ है कि क्या हम शरीर से स्वाधीन हो सके हैं? यदि शरीर, मन, इन्द्रियों की दृष्टि से सोचें तो ज्ञात होगा कि इस क्षेत्र में भी हम परतन्त्र हैं। शरीर से स्वतन्त्र होने का अर्थ यह हैं कि शरीर हमारी आज्ञा में रहे, हम जिस तरह रखना चाहें वह रहे, लेकिन ऐसा नहीं होता है। हमारे न चाहने पर भी रुग्णावस्था आ जाती है और हमारी इच्छा के विपरीत वृद्धावस्था आ जाती है। अब आप ही बतायें कि आप शारीरिक दृष्टि से कैसे आजाद हुए? इस तरह जहाँ हमारा मन ले जाता है, हम जाते हैं, लेकिन हम जहाँ जाना चाहते हैं वहाँ हमारा मन नहीं जाता है। इसी तरह इन्द्रियां जो कार्य हमसे करवाती हैं, हम करते हैं, लेकिन जो हम करना चाहते है, वह हम नहीं कर पाते हैं।

इस प्रकार मन, इन्द्रियां, शरीर आदि सभी दृष्टि से आप पराधीन हैं। अब आप ही बताइये कि आप कौनसी दृष्टि से स्वतन्त्र हैं?

क्या आप सांस्कृतिक दृष्टि से स्वतन्त्र हैं?
क्या आप आध्यात्मिक दृष्टि से स्वतन्त्र हैं?
क्या आप मन की दृष्टि से स्वतन्त्र हैं?
क्या आप शरीर की दृष्टि से स्वतन्त्र हैं?

आज भारत की यह स्थिति है कि जिसने केवल अहिंसा के बल पर स्वतन्त्रता प्राप्त की, वह पूर्ण रूप से अहिंसक होता जा रहा है, हजारों-लाखों टन मांस, मेंढ़क की टांगें, बाहर निर्यात की जाती हैं। आज भारत में लाखों की संख्या में लोगों को भरपेट भोजन व तन ढकने के लिए कपड़ा नहीं मिल रहा है।

बड़े ही सीधे ढंग से हम स्वतन्त्रता दिवस मना लेते हैं, लेकिन कभी गहराई में नहीं जाते हैं कि क्या हम स्वतन्त्र हैं? यह सोचने का विषय है, लेकिन आज के इंसान ने अपने आपको इस कदर व्यस्त कर रखा है कि उसे सोचने का समय ही नहीं है।

विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार दुनिया की 5 अरब जनसंख्या में से करीब

ढाई अरब की जनसंख्या की औसत आय 25-30 पैसे प्रतिदिन है। सोचिए इन से उनकी जिन्दगी किस तरह व्यतीत हो रही होगी ?

किस तरह से मजहब के नाम पर, भाषा व प्रान्त के नाम पर देश के टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं ? एक तरफ आये दिन खून की होलियां खेली जा रही हैं और दूसरी तरफ आप स्वतन्त्रता दिवस मना रहे हैं, क्या आपको वास्तव में स्वतन्त्रता प्राप्त है ? नहीं आप केवल लकीर पीट रहे हैं। वास्तविक स्वतन्त्रता से आपको कोई मतलब नहीं है। आज मजहब के नाम पर कितना खून-खराबा हो रहा है ?

जब भारत व पाकिस्तान का विभाजन हुआ तब एटवाबाद में एक घटना घटी, जिसने समस्त जन समुदाय के मानस पटल को बदल दिया। एक कुतिया व एक पिल्ला सड़क पार कर रहें थे। सामने से एक जीप आई, वह कुतिया को कुचलती हुई निकल गई। जब बेचारा पिल्ला कुतिया का बच्चा अकेला रह गया, वह बुरी तरह से रो रहा था। वहीं एक पेड़ पर बन्दरिया रहती थी। उससे वह करुणापूर्ण दृश्य नहीं देखा गया। वह नीचे आई और उस पिल्ले को गोदी में उठाकर ऊपर ले गई। जिन लोगों ने यह दृश्य देखा उन्हें आश्चर्य हुआ, उन्होंने सोचा कि वह उस पिल्ले को मार देगी। कुछ व्यक्ति घर की छतों से क्या देखते हैं कि वह उसे अपना दूध पिला रही है। इस पर लोगों ने चिन्तन किया कि हम मजहब के नाम पर कितना खून-खराबा करते हैं और यह बन्दरिया अपने विरोधी जाति के बच्चे का पालन कर रही है। यह समाचार द्रुत गति से बिजली की भांति समस्त शहर में फैल गया और इस तरह एक छोटी सी घटना ने पूरे शहर के लोगों के हृदय को परिवर्तित कर दिया। उन्होंने प्रण किया कि अब हम जाति, धर्म, भाषा के नाम पर खून-खराबा नहीं करेंगे। देखिए, उस पशु की संवेदानात्मक भावना को, जिसने अपनी जाति को भुलाकर एक स्नेहशील माता की भांति अपना समस्त स्नेह उस बच्चे पर उंडेल दिया।

लेकिन, विचारणीय प्रश्न यह है कि आज का मानव तो मानव के प्रति भी संवेदना नहीं रखता है। यदि एक व्यक्ति सड़क पर गिर जाए तो दूसरा उसका सहारा बनने के बजाए उसे एक धक्का और लगा देता है। यह है आज के मानव की संवेदनशीलता।

जिस भारत को हम सोने की चिड़िया कहते थे और जहाँ दूध व दही की नदियाँ बहती थीं, उस देश की आज क्या हालत हो रही है ? एक मजदूर जो दिन भर कड़ी मेहनत करता है, उसे भरपेट भोजन व तन ढकने के लिए कपड़ा नहीं मिल रहा है। ऐसा क्यों हो रहा है ? भारत को ऐसा बनाने वाले कौन हैं ? यदि हम स्वयं ही इस प्रश्न का उत्तर खोजें तो यह ज्यादा कठिन नहीं होगा कि भारत को गरीब बनाने वाले भारत के लोग ही हैं। भारत के अरबों रुपये स्विस बैंकों में जमा हो रहे हैं जिनका कोई उपयोग नहीं हो रहा है। यदि भारत के वे रुपये भारत में आ जाएँ

तो भारत आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व आत्म-निर्भर बन जाय। इसी प्रसंग में एक अंग्रेज ने कहा है कि "भारत एक ऐसा अमीर देश है जहाँ गरीब लोग निवास करते हैं।"

भारत में जहाँ दूध, दही की नदियाँ बहती थीं, वहाँ आज तो पानी बिक रहा है। शास्त्रकारों ने कहा है कि पंचम काल ह्रास का काल होगा। चतुर्थ काल में तो मिट्टी का स्वाद भी मिश्री की भांति होता था, लेकिन अब तो मिश्री का स्वाद भी उतना मीठा नहीं होगा। और तो और आज से 50 वर्ष पहले घी में जो महक थी, वह आज नहीं है और जो आज है वह आगे नहीं रहेगी। कारण यह है कि आज जमाना इतना बदल गया है कि नींव से ही मिलावट शुरू हो जाती है।

वर्षों से बड़े-बड़े नेता स्वतन्त्रता पर भाषण देते चले आ रहे हैं और कहते हैं कि आज का दिन कितना महान् दिन है कि हम स्वतन्त्र हुए हैं। परन्तु जरा गहराई से विचार करें कि क्या आप वास्तव में स्वतन्त्र हैं ? जब आप स्वतन्त्र हो गए हैं तो आप बाहर जाते समय पुलिस क्यों ले जाते हैं ? आपके चारों तरफ पुलिस है आप भाषण दे रहे हैं, स्वतन्त्रता का ? आप कहां से स्वतन्त्र हुए ? आप स्वतन्त्र नहीं हैं। यदि आप स्वतन्त्र होते तो आपको किसी का भय नहीं होता, आप निर्भय होकर भाषण देते। इन रक्षा साधनों से नेता लोगों की रक्षा तो हो जाती है, लेकिन सामान्य नागरिक की क्या हालत होगी ? यह सोचने का विषय है। मूल में यही आशय है कि जब तक आप देश के प्रति समर्पित नहीं होंगे, देश के प्रति हमारे मन में प्रेम उत्पन्न नहीं होगा तब तक स्वतन्त्रता दिवस मनाना मात्र एक दिखावा होगा।

जापान के विकास से आप परिचित हैं। जब हिरोशिमा नागासाकी पर बम्ब गिरे तब वह पूर्णतया नष्ट हो गया था, लेकिन कुछ समय बाद वह एक महान् शक्ति के रूप में उभरकर सामने आया। इसका प्रमुख कारण यह है कि वहां के लोग अपने देश के प्रति पूर्णरूप से समर्पित हैं। वहाँ के बच्चे-बच्चे में देश के प्रति सच्ची श्रद्धा है। एक बार एक भारतीय जापान में ट्रेन से सफर कर रहा था। उन्हें किसी वस्तु की आवश्यकता थी, लेकिन वह उन्हें वहाँ मिली नहीं। तब उन्होंने वहाँ की बुराई कर दी—यह कैसा देश है ? यहाँ कुछ नहीं मिलता। वहीं पर एक जापान का बच्चा खड़ा था, उसने हाथ जोड़कर कहा कि मैं आपसे विनती करता हूँ आप मेरे देश की बुराई न करें, आपको जो चाहिये मैं आपको दे सकता हूँ। देखिए उस बच्चे के मन में अपने देश के प्रति कितना स्नेह है ? लेकिन भारत की यह स्थिति है कि यदि अपना थोड़ा सा हित होते समय देश का बहुत बड़ा अहित हो तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

दोनों की अंतरंग भावना में फर्क है। वहाँ के बच्चे-बच्चे के मन में देश के प्रति त्याग, समर्पण की भावना है। वे अपने देश की बुराई तनिक भी सहन नहीं कर सकते जबकि भारत के लोग अपनी भक्ति में लगे हैं, चाहे देश बरबाद क्यों न हो जाए।

मूल बात यही है कि जब तक आप देश के प्रति वफादार नहीं होंगे, तब तक देश की उन्नति नहीं होगी, देश में कोई परिवर्तन नहीं होगा। आप सिर्फ स्वाधीनता की औपचारिकता निभाते चले जायेंगे और देश पतन के गर्त में डूबता चला जाएगा। यदि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के साथ अहिंसा, भाईचारे व प्रेम का व्यवहार करे तो हम स्वाधीन हो सकते हैं, अन्यथा नहीं। ज्ञानीजन तो कहते हैं कि हमारी आत्मा भी कर्मों के बन्धन में बन्धी है, जब तक कर्मों का क्षय नहीं होगा, हम स्वाधीन नहीं हो सकते हैं।

आज देश की वफादारी की क्या कहें, परमात्मा के प्रति भी वफादारी नहीं रही है। आज तो दुनिया में पैसे की पूजा होती है। वह लोगों को इतना प्रिय हो गया है कि वे उसके लिए धर्म, ईमान सब कुछ छोड़ देते हैं। यहां तक कि वे ईश्वर को भी अपने कुकर्मों में शामिल करके छोटी-छोटी बातों में भगवान की सौगन्ध खा लेते हैं। पैसे ने उन्हें इतना अंधा बना दिया है कि वे भगवान की सत्य परिधि को भी भूल गये हैं। एक क्षण पहले वह उसकी पूजा करता है और एक क्षण बाद में वह उसकी अवज्ञा कर देता है। यह है आज के भारतीयों का दृष्टिकोण।

निष्कर्ष की भाषा में सांस्कृतिक दृष्टि से हमें अभी स्वतन्त्र होना है। अंग्रेज गया है, अंग्रेजीपन नहीं गया। अपनी भाषा, अपना भोजन, अपना पहनावा पिछड़ेपन का प्रतीक बन गया और पाश्चात्य तौर-तरीका आधुनिकता का दर्शन माना जा रहा है। आर्थिक विषमता ने राजनैतिक स्वतन्त्रता पर प्रहार किया है। झोंपड़ी की परछाई सिकुड़ रही है, महल की ऊँचाई विस्तार पा रही है। देश की सम्पदा पर सिर्फ एक वर्ग का नियन्त्रण है। एक तरफ कुत्ते दूध से नहा रहे हैं और उन्हें कारों में घुमाया जाता है। दूसरी ओर करोड़ों लोग एक वक्त के भोजन के लिए लाचार हैं। जब तक एक भी व्यक्ति भूखा, एक भी बीमार बिना दवा के मर रहा है, एक भी सिर बिना छत के जी रहा है, एक भी तन कपड़े के अभाव में नंगा है, स्वतन्त्रता का जश्न मनाना महज विडम्बना है।

संसारिक स्वतन्त्रता के साथ आध्यात्मिक स्वतन्त्रता को भी प्राप्त करो। जब तक हम हमारे आन्तरिक शत्रु क्रोधादि पर विजय प्राप्त नहीं कर लेते, जब तक हममें आत्म-चेतना का प्रादुर्भाव नहीं होगा तब तक हम स्वाधीन नहीं हो सकेंगे। ज्ञानीजन कहते हैं कि हमारी आत्मा कर्म रूपी बेड़ियों में जकड़ी हुई है, जब तक हम कर्मों का क्षय नहीं करेंगे तब तक हम स्वाधीन नहीं हो सकते। इसके लिए आवश्यकता है—आत्म-चेतना, सम्यक् दृष्टि भाव के जागरण की!

15 अगस्त, 1987

यहां न कुछ तेरा है न मेरा है, न ही यह धन-सम्पत्ति/यह भौतिकता की चकाचौंध या नाते-रिश्तेदार अन्तिम समय में साथ आने वाले हैं, फिर अहंकार/अभिमान किस पर ? क्यों हम सिर्फ बाह्य वस्तुओं/व्यवस्थाओं के प्रति ही सजग हैं ? आत्मा के प्रति हम सजग क्यों नहीं ?

अहंकार किस पर ?

चैतन्य देव को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि अनन्त काल की मोह-माया को त्याग कर तू जागृत हो जा क्योंकि तू जिस देश में रहता है वह देश तेरा नहीं हैं। तुझे यहां से जाना होगा, यदि आत्मा की दृष्टि से हम विचार करें, तो हमें महसूस होगा कि यहां हमारा कुछ नहीं है और जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, वह भी नश्वर है।

आचारांग सूत्र में भगवान महावीर ने कहा है—हे मनुष्य, तेरा कुछ नहीं है। यहां तक कि शरीर भी तेरा नहीं है। यदि हम गहराई मे सोचें तो हमें ज्ञात होगा कि हम जितने शरीर के प्रति सजग रहते हैं, उतने यदि आत्मा के प्रति सजग रहें तो हमारा कल्याण हो सकता है। हम स्वयं में छिपी हुई बहुमूल्य निधि को नहीं टटोलते। बाहर में दूसरों को टटोलते हैं कि कौन कैसा है, क्या कर रहा है ?

इस संसार में मनुष्य जीवन से बढ़कर कोई श्रेष्ठ तत्त्व नहीं है। वह श्रेष्ठ तत्त्व आपके हाथ लगा है, उसका उपयोग किस रूप में करना है, आप चिंतन करें। बाजार में जाते हैं, तुराई खरादनी हैं तो उसका थोड़ा सा टुकड़ा तोड़ कर चखेंगे कि कहीं खारी या कड़वी तो नहीं है ? कहने का तात्पर्य है पदार्थों की कोमत का मूल्यांकन इंसान के द्वारा ही किया जाता है। पदार्थ स्वयं अपनी कीमत का मूल्यांकन नहीं कर सकता। एक हीरे की पहचान जौहरी ही कर सकता है, अन्य के लिए तो यह साधारण पत्थर ही होगा। आप कहते हैं यह तेरा है, यह मेरा है, मगर ज्ञानीजन कहते हैं—यहां आपका कुछ नहीं है। अगर आपका है कुछ तो आप जाते वक्त अपने साथ क्यों नहीं ले जाते हैं ? साथ ले जाने की तो छोड़िए कभी ऐसा मौका भी आ जाता है जब आपका बेटा आपको घर से बाहर निकाल देता है। यही जीवन व्यवहार की बात है। यह मेरा-तेरा ही अहंकार का निर्माण करता है। जिस व्यक्ति के जीवन से अहंकार छूट गया, वह आगे बढ़ सकता है। अहंकार विकास की अर्गला है। मनुष्य सोचता है कि हम जैसे जमे हुए हैं वैसे ही जमे रहेंगे, हमारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, मगर ऐसे व्यक्ति का तो शीघ्र ही पतन होता है।

एक लड़का था, उसके माता-पिता की मृत्यु हो गई। बेचारे को किसी परिवार-रिश्तेदार वालों ने रखा नहीं। मगर पेट को तो किराया देना ही पड़ता है, अतः उसने भीख माँगना शुरू कर दिया। तब शहर के लोगों ने सोचा कि यह इस तरह से भीख मांगता है, यह अच्छा नहीं लगता है, क्योंकि खानदानी है। अतः ऐसा करते हैं—रोजाना एक-एक घर की वारी वांध लेते हैं, ताकि इसको भोजन मिल जाए और एक व्यक्ति पर भी भार नहीं पड़े।

इस तरह वह प्रत्येक दिन प्रत्येक घर में भोजन करने जाता था। एक दिन एक सेठ के यहां भोजन की वारी आई। वह सेठ की दुकान पर आकर कहने लगा—सेठ जी आज मुझे आपके यहां भोजन करना है, अतः भोजन करा दो, लेकिन सेठ ने कोई ध्यान नहीं दिया। वच्चे ने कहा—आज आपकी वारी है, इसलिए आया हूँ। मुझे भूख लगी है, अतः मुझे भोजन दे दीजिए। लेकिन सेठ ने फिर भी ध्यान नहीं दिया।

वह वच्चा यद्यपि खानदानी था और स्वाभिमानी भी था, लेकिन परिस्थितियों ने उसे भिखारी बना दिया था। उसने कहा—सेठ जी, नहीं दे सकते तो कोई वात नही, मगर मेरी वात तो सुन लो, वरना मैं समझूंगा कि आपके कान ही नही है। फिर भी सेठ ध्यान नहीं देता है, तव वह वच्चा कहता है—आप सुन नहीं रहे हैं तो ठीक है, मगर मेरी तरफ देख तो लो, वरना मैं समझूंगा की आपके आंखे हां नहीं है। फिर भी सेठ ने कोई ध्यान नहीं दिया। तव वह लड़का कहता है—आप मुझे यह तो कह दीजिए कि मेरे यहां से तुझे कुछ नहीं मिलेगा। यदि आप नहीं वोलेंगे तो मैं समझूंगा कि आपके जीभ ही नहीं है।

इस तरह वच्चा कहता जा रहा है, मगर वह सेठ सुन नहीं रहा था। इधर एक साधु उन दोनों का वार्तालाप सुन रहा था, उसने कहा कि कितनी देर से यह वच्चा रोटी आपसे मांग रहा है और आप ध्यान नहीं दे रहे हैं? तब वह सेठ कहता है-जाओ-जाओ तुम्हारें जैसे मांगने वाले कई आते हैं, खुद से तो कमाया नहीं जाता है, चले आते हैं मांगने के लिए। तव साधु कहता है—सेठ यदि इसमें कमाने की शक्ति होती तो यह तेरे जैसे निर्दयी सेठ के पास इतनी देर गिड़गिड़ाता नहीं।

मनुष्य पैसे के अहंकार में भूल जाता है कि यह पैसा चलती-फिरती छाया है, जो आज यहां है कल दूसरी जगह भी जा सकता है, लेकिन वे समय के उतार-चढ़ाव को भूल जाते हैं।

वावाजी सेठजी से कहते हैं—"सेठजी, इतना अहंकार अच्छा नहीं है। यह पैसा आपके साथ जाने वाला नहीं हैं।" तो सेठ कहता है कि "मुझे उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है, चले जाओ यहां से। मेरा समय वरवाद मत करो। तव उस साधु ने वच्चे से कहा—"वेटा यहां कहां मांगने आ गये तुम, यह इंसान नहीं, हैवान

है।" बच्चा भी वहां से चला गया और बावाजी भी मठ में चले गये। बाबाजी ने यह् निर्णय कर लिया कि इसका अहंकार नष्ट करके इसे सुपथ पर लाना है।

बावाजी मठ में जाकर साधना करने लगे, मगर उनका मन साधना में नहीं लगा। रह-रह कर वह सेठ ही ध्यान में आता है। बाबाजी ने उस सेठ की सम्पूर्ण दिनचर्या का पता लगाया कि सेठ कब उठता है? क्या करता है? कहां जाता है? कब जाता है? कब आता है? फिर बावा जी को यह भी पता चल गया कि यह 4 वजे उठकर नदी पर जाता है और फिर 2 घण्टे बाद वापस आता है। बाबा जी के पास वैक्रिय लब्धि थी। उससे वे चाहे जैसा रूप बना सकते थे। दूसरे दिन बावाजी ने छिपकर देखा कि सेठ नदी पर जा रहे हैं और कुछ आगे निकल गये हैं, तब उन्होंने सेठजी का हुवहू रूप बना लिया और घर गया। तव लड़कों ने कहा—पिताजी आज इतनी जल्दी कैसे आ गये?" तो रुपधारी सेठ ने कहा कि आज मैंने देखा कि मेरे जैसा ही बहुरुपिया जा रहा है। मैंने सोचा यह घर में नहीं चला जाये, इसलिए मैं तुरन्त लौट आया।

उधर असली सेठजी जब नदी पर से आये तो उस बहुरुपिये ने उन्हें दूर से दख लिया और कहने लगा कि देखो, वह बहुरुपिया आ रहा है और उसने हुवहू मेरा ही रूप बना रखा है। जब सेठ घर आया तो लडके उसे धक्के मारने लगे और कहने लगे कि कहां घुस रहा है? निकल जा यहां से। फिर उन्होंने उसे धक्के मारकर बाहर कर दिया। तव सेठ कहता है कि तुम यह क्या कर रहे हो? मैं तो तुम्हारा पिता हूँ। तब वे कहते हैं—"पिता बनना, कितना आसान है, बहुरुपिये? अपनी खैरियत चाहता है तो तुरन्त निकल जा, वरना हालत बहुत खराब हो जाएगी। मेरे पिताजी तो अन्दर वैठे हैं।

कल तक जो सेठ अहंकार में भरा हुआ था, वह आज दर दर की ठोकरे खाने के लिए मजबूर हो रहा था। वह स्वयं यह सोच रहा था कि कल तो मैं अपने आपको धन कुबेर मानता था और आज लड़कों ने ही मुझे बाहर निकाल दिया है। उसने सोचा अब मुझे राजा की सहायता लेनी चाहिए। वह राजा के पास जाकर अपनी सारी कहानी सुनाता है।

तब राजा ने अपने सिपाहियों को आदेश दिया "उस बहुरुपिये को पकड़ कर ले आओ।" इधर बावाजी को पहले ही पता था कि यह सब होने वाला है। उसने सेठ के लड़कों को बुलाकर कहा कि तुमने उसे मारपीट करके बाहर कर दिया है। यदि वह राजा के पास चला जाएगा तब राजा हमें वहां बुला लेगा। वहां तुम कैसे पहचानोगें कि असली पिता मैं हूँ या वह है? तब लड़कों ने कहा कि "हम आपका हाथ पकड़ कर चलेगें।" तब बावाजी ने कहा—अगर वे हमें उलट-पुलट कर बैठा

देंगे तब कैसे पता लगाओगे? तब उन्होंने कहा–आप ही बताएं, हमें क्या करना है? तब बाबाजी ने पुरानी एक बही मंगाई जिसमें हिसाब लिखा हुआ था। और उसमें दो हिसाब अच्छी तरह से याद कर लिये, फिर उन्होंने उन लड़कों से कहा कि यदि तुम्हें राजा पहचान करने के लिए कहे तो तुम कहना कि हम जो दो प्रश्न करेंगे उनका उत्तर बता देगा वही हमारा असली पिता होगा।

पहला प्रश्न आज से 10 वर्ष पहले हमारे बड़े भाई की शादी हुई, उसमें कितना खर्च लगा?

दूसरा प्रश्न कि आज से 12 वर्ष पहले हमारा मकान बना उसमें कितना खर्चा लगा?

लड़कों ने कहा—ठीक है पिताजी।

इधर राजा के बुलाने पर वह बाबाजी राज दरबार में गए। इधर बेटे भी उनके साथ गये। राजा ने उन्हें पूछा—बताओ तुम्हारा असली पिता कौन है?" राजा ने दोनों को उलट-पुलट कर बैठा दिया। लड़कों ने कहा कि दोनों की एक सी शक्ल है, अतः हम नहीं पहचान सकते हैं? लेकिन हम दो सवाल करेंगे, जो भी उन दोनों सवालों का जवाब दे देंगे, वे ही हमारे असली पिता होंगे।

राजा ने कहा—"हां यह ठीक है। पूछो तुम इन दोनों से।"

लड़कों ने पहले से तय दोनों सवाल पूछे। असली सेठ को तो याद था नहीं, क्योंकि उन्हें याद रखने की जरूरत भी नहीं पड़ी, इसलिए वह निरुत्तर हो गये। लेकिन बाबाजी याद कर के आये थे, अतः उत्तर दे दिया। असली सेठ को धक्के मारकर बाहर निकाल दिया और बाबाजी को घर भेज दिया।

बाबाजी को तो ऐश के चक्कर में पड़ना नहीं था, उन्हें तो सेठ को सबक सिखाना था जो उन्होंने सिखा दिया। अब वे पुनः अपने मठ पर पहुंच गये। इधर वह सेठ सोचने लगा—कहां जाऊ? यदि घर पर जाऊंगा तो लड़के धक्के मारकर निकाल देंगे। तभी उन्हें ध्यान आया कि कल जो बाबाजी मुझे मिले, उन्होंने मुझे शिक्षा भी दी थी, लेकिन मैंने उनका भी तिरस्कार कर दिया। और आज ही मेरी वह दशा हो गयी है। उसने सोचा कि मुझे तो उन बाबाजी की शरण में ही जाना चाहिए।

उसने बाबाजी के आश्रम पर जाकर उन्हें विधिवत वंदन किया और कहा—"अब मैं आपकी शरण आया हूं। आपका शिष्य बनना चाहता हूं।" बाबाजी ने कहा–मुझे तुम्हारे जैसा शिष्य नहीं चाहिए। तब सेठ ने कहा—गुरुदेव आप मेरी कल की बातों पर नहीं जायें। मैं कल की घटना के लिए शर्मिन्दा हूं। मेरे बेटों ने मुझे घर से निकाल दियाहै, तब मुझे महसूस हुआ कि अहंकार करने वाला शीघ्र ही विनाश को प्राप्त करता है। आखिर में बाबाजी ने कहा—"जाओ, अब तुम्हें तुम्हारे

बेटे बाहर नहीं निकालेंगे। यह सब तो मेरी ही माया थी और यह सब मैंने ही किया था, तुम्हें सद्बुद्धि देने के लिए।" तब सेठ ने कहा—"गुरुदेव, मैं अभी घर जाकर बही-खाते लाता हूं कि मेरी कितनी सम्पत्ति है और उसमें से आधी सम्पत्ति दान के लिए अभी निकाल दूंगा। बाबाजी ने कहा—"तुम्हारी जैसी मर्जी हो वैसा करो।"

जिस अहंकार में हम सब कुछ भूल जाते हैं, सत्य को ठुकरा देते हैं, उसका क्या परिणाम निकल सकता है-यह जरा सोचने का विषय है। हम यदि सत्य को शुरू में ही स्वीकार करलें तो हमारे जीवन में इस प्रकार की विषमताएं उत्पन्न ही नहीं हो। इसके लिए ही आपको संदेश दिये जाते हैं। आप अपनी आत्मा की आवाज को समझें और उसी के द्वारा बताये गये मार्ग का चयन करें।

17 अगस्त, 1987

हमारी आत्मा अनादि काल से सोई हुई है। मिथ्यात्व, मोह और अज्ञान-निद्रा का आवरण हमारी आत्मा पर छाया हुआ है। जब हमारी आत्मा में जागृति आ जाएगी, तब हमें अपने अंतरंग शत्रु दिखाई देने लगेंगे कि इन्होंने हमारे भीतर की आत्मा को कैसे दूषित कर रखा है?

आत्म-जागरण

विश्व में जितने भी लोकोत्तर पुरुष हुए, महात्मा हुए, उन्होंने हमें जागृति का सन्देश दिया है। हमारे देश में तस्करों, लुटेरों का जाल बिछा हुआ है। यदि हम इनके प्रति सजग नहीं होंगे तो वे हमें और हमारे देश को बरबाद कर देंगे। यदि हम इनके प्रति सजग रहेंगे तो ये हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे। इसी तरह हमारी चेतना पर भी अनेक कषाय, लोभ, लालच रूपी तस्करों, लुटेरों ने अपनी समस्त शक्ति लगाकर हमारी आत्मा को दबोच रखा है। लेकिन यदि हम उनके प्रति सजग हो जाएं तो वे स्वयं ही अपने आप पराजित हो सकते हैं। इसलिए आवश्यकता है आत्मा के जागरण की। आत्म-जागरण से ही हम अपने भीतर के लुटेरों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

हमारी आत्मा अनादिकाल से सोई हुई है। मिथ्यात्व, मोह और अज्ञान-निद्रा का आवरण हमारी आत्मा पर छाया हुआ है। जब हमारी आत्मा में जागृति आ जाएगी, तब हमें अपने अंतरंग शत्रु दिखाई देने लगेंगे कि इन्होंने हमारे भीतर की आत्मा को कैसे दूषित कर रखा हैं?

ज्ञानीजन कहते हैं कि जब हमारे में आत्म-जागरण का प्रादुर्भाव होगा, जब हम सतर्क होंगे, तब हमें ज्ञात होगा कि हम अपना अमूल्य समय खो रहे हैं। हमारे बहुत से कार्य भाव-निद्रा के कार्य हैं। बहुत से ऐसे निमित्त बनते हैं कि चेतना को झटका लगता हैं और व्यक्ति जागृत हो जाता है। लेकिन, यह क्षमता भी हर इंसान की नहीं होती। हर एक के सोचने का अलग-अलग ढंग होता है।

राजस्थान में एक ग्राम सिरोही है। वहाँ जैन लोग बहुत हैं। लेकिन वे मूर्तिपूजक हैं। एक बार वहां साधुओं का चातुर्मास हुआ। सर्दी का समय था। एक युवक वहां प्रातः काल साधना में बैठा था और उसने शाल ओढ़ रखी थी। प्रातः काल सभी गुरु महाराज के दर्शनार्थ आए। एक युवती ने गुरु महाराज को वन्दना करके, जो युवक साधना में बैठा था उसे भी उसी तरह से वंदना कर दी। वंदना करने के पश्चात् उस युवक ने अपनी दृष्टि ऊपर उठाई तो उधर उस युवती ने भी ऊपर दृष्टि उठाई। उन्होंने आपस में एक-दूसरे को देखा, तो आश्चर्य चकित हो गये—और सोचने लगे कि गजब हो गया, क्योंकि उस दिन ही उस युवक व उस युवती का पाणिग्रहण होने

वाला था। लेकिन उसने तो उसे गुरु मानकर वन्दना कर ली थी, अतः वह उससे शादी किस तरह करती ? इस तरह वह किसी दूसरे से भी शादी नहीं कर सकती थी, क्योंकि उसने पहले उसे पति रूप में स्वीकार कर लिया था। अतः उसने तत्काल निर्णय लिया कि मैं तो साध्वी बनूंगी। यह सत्य घटना है।

देखिए, जागरण का क्या निमित्त बनता है, कि एक छोटी-सी घटना ने एक युवती के जीवन को बदल दिया। लेकिन, यह गुण भी सभी में नहीं होता। जिनकी आत्मा जागृत होती है, उन्हीं के लिए निमित्त उपादेय बनते हैं और उनके जीवन को बदल देते हैं। यद्यपि जीवन में अनेक निमित्त बनते हैं, लेकिन हम उन्हें ग्रहण नहीं कर पाते हैं।

आचारांग सूत्र में कहा गया है—

"*जे आसवा ते परिसवा। जे परिसवा ते आसवा*"

अर्थात्—जो बन्धन के रास्ते हैं, वे ही मुक्ति के रास्ते हैं। यदि हम चाहें तो उनके द्वारा अपने जीवन को बदल सकते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के सोचने का अपना-अपना अलग-अलग ढंग होता है। एक ही बात को व्यक्ति भिन्न-भिन्न तरीके से सोचता है। मिथ्या दृष्टि संवर की प्रवृति को भी आश्रव बना देती है और सम्यग् दृष्टि उसी विषय को संवर के रूप में—कर्म-मुक्ति के रूप में परिणत कर लेती है। इस सन्दर्भ में आचार्य भगवन् कई बार एक कथा फरमाया करते हैं। वही ऐतिहासिक घटना मैं आपके समक्ष रख रहा हूँ।

एक पंडित जी राजा को हमेशा भागवत् कथा सुनाया करते थे। राजा उन्हें प्रत्येक दिन एक मुहर दिया करते थे। लेकिन अचानक ही उन पंडित जी को बाहर जाने के लिए शादी का निमन्त्रण आ गया। बेचारे बड़ी दुविधा में पड़ गये। क्या करें, अगर न जाएं तो सम्बन्ध टूटने का भय और जाएं तो एक मुहर में कमी पड़ जाए। वे बहुत चिन्तित हो रहे थे। उनके पुत्र ने यह देखा तो पूछा—"पिताजी आप इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हैं ? मैंने भी तो शिक्षा प्राप्त की है, उसका भी तो कोई उपयोग है, आप बताइये किस वजह से आप परेशान हो रहे हैं ?" तब पंडित जी ने कहा—"बेटा वह काम तेरे वश का नहीं है", तो बेटा कहता है कि "आप बताओ तो सही, क्या करना है ?" पंडित जी ने कहा कि "राजा को भागवत् सुनानी है।" पुत्र ने कहा—"ठीक है पिताजी, मैं सुना दूंगा।" दूसरे दिन वह लड़का प्रातः काल उठकर राजा के पास जाता है और उन्हें भागवत् सुनाने की तैयारी करता है। वह उन्हें एक श्लोक सुनाता है—

तिलसर्षपमात्रं च, यो नरो मांसं भक्षति।
स नरो नरकं याति, यावच्चन्द्र दिवाकरौ ॥

इस श्लोक का अर्थ उसने राजा को सही-सही बता दिया कि जो तिल व सरसों के दाने जितना भी मांस खाता है, वह नरक में जाता है और तब तक नरक

में रहता है, जब तक सूर्य-चन्द्रमा चमकते हैं। तब राजा अति-क्रोधित होकर कहता है कि इसके सभी पौथी-पत्र बाहर फैंक दो और इसे पकड़ कर बाहर निकाल दो। तब वह लड़का बोला-हे राजन् ! अभी तो मैंने अर्थ बताना प्रारम्भ किया है, अभी तो और अर्थ बताना है। आप यह क्या कर रहे हैं ? "तब राजा कहता है—"मैंने बहुत सुन लिया, मुझे अब कुछ नहीं सुनना, क्योंकि तुम कहते हो कि जिसने एक तिल व सरसों के दाने जितना भी मांस खाया है, वह नरक में जाएगा। मैंने तो बहुत मांस खाया है, अतः मेरी नरक तो निश्चित है, फिर मैं क्यों एक सोने की मुद्रा खराब करूं ? मैंने तो यह बहुत सुन ली, अब और सुनना नहीं चाहता।" वह वेचारा आ गया। कुछ दिनों बाद उसके पिताजी आए और पूछने लगे—"बेटा, काम अच्छी तरह चल रहा है ?" बेटा कहता है—"पिताजी मैं तो गया था। मैंने उन्हें एक श्लोक ही सुनाया तब ही वे नाराज हो गये और कहने लगे—"मैंने तो बहुत मांस खाया है; मेरी तो अब नरक निश्चित है। अतः अब मुझे नहीं सुन्ना भागवत्। अब मैं क्यों एक सोने की मुहर खराब करूं और ऐसा कहकर उन्होंने मुझे वापिस भेज दिया। "पिताजी ने अपना माथा ठोंक लिया–" अरे मूर्ख, तूने यह क्या किया ? राजा को नाराज कर दिया। अब तो हमारी जीविका ही चली जाएगी। वह दूसरे दिन राजा के पास गया तो राजा ने कहा—"हमने तो भागवत् बहुत सुन ली। अब हमें नहीं सुनना है। तुम चले जाओ।" पंडित बहुत अनुनय-विनय करता है—" राजन् एक दिन ही और सुन लो चाहे बाद में न सुनना। राजा कहता है—चलो ठीक है, इतने दिन सुनी है तो अब और एक दिन सही।" पंडित वही श्लोक पढ़ता है, तो राजा कहता है—"यही श्लोक मुझे तुम्हारे पुत्र ने सुनाया था। उसने कहा कि जिसने तिल व सरसों के दाने जितना भी मांस खाया है, वह नरक में जाएगा। तब पंडित जी कहते हैं कि" राजन् ! इसका यह अर्थ है कि जिसने तिल व सरसों जितना मांस खाया है वही नरक में जाएगा, जिसने ज्यादा खाया है उसका कुछ नहीं होगा। राजन् ! आपने तो बहुत खाया है, अतः आप नरक में नहीं जाएगें।" तब राजा खुश हो जाता हैं और पूछता है कि "मैं तो नरक में नहीं जाऊँगा न ? क्योंकि मैंने तो बहुत मांस खाया है।" तो पंडित जी कहते हैं—नहीं, राजन्। आपको कुछ नहीं होगा। राजा खुश होकर उसे एक मुहर दे देते हैं। इस प्रकार पुनः उसकी मुहर शुरू हो जाती है।

देखिए, सोचने-समझने का ढंग किस तरह दो रूपों में परिवर्तित हो गया है। एक ने उसका किस तरह अर्थ बताया और दूसरे ने उसी का किस तरह अर्थ बताया है ? किस तरह से सबके सोचने के अलग-अलग तरीके होते हैं ?

एक बार उदयपुर के महाराणा गद्दी पर आसीन थे। उनकी आंखों में शूल चलने लग गई। बहुत इलाज कराया मगर कोई लाभ नहीं हुआ। अंत में एक वैद्य ने कहा कि महाराज, कल मैं दवाई बनाकर लाऊँगा। उसने एक जीवित कबूतर

वाला था। लेकिन उसने तो उसे गुरु मानकर वन्दना कर ली थी, अतः वह उससे शादी किस तरह करती ? इस तरह वह किसी दूसरे से भी शादी नहीं कर सकती थी, क्योंकि उसने पहले उसे पति रूप में स्वीकार कर लिया था। अतः उसने तत्काल निर्णय लिया कि मैं तो साध्वी बनूंगी। यह सत्य घटना है।

देखिए, जागरण का क्या निमित्त बनता है, कि एक छोटी-सी घटना ने एक युवती के जीवन को बदल दिया। लेकिन, यह गुण भी सभी में नहीं होता। जिनकी आत्मा जागृत होती है, उन्हीं के लिए निमित्त उपादेय बनते हैं और उनके जीवन को बदल देते हैं। यद्यपि जीवन में अनेक निमित्त बनते हैं, लेकिन हम उन्हें ग्रहण नहीं कर पाते हैं।

आचारांग सूत्र में कहा गया है—

"जे आसवा ते परिसवा। जे परिसवा ते आसवा"

अर्थात्—जो बन्धन के रास्ते हैं, वे ही मुक्ति के रास्ते हैं। यदि हम चाहें तो उनके द्वारा अपने जीवन को बदल सकते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के सोचने का अपना-अपना अलग-अलग ढंग होता है। एक ही बात को व्यक्ति भिन्न-भिन्न तरीके से सोचता है। मिथ्या दृष्टि संवर की प्रवृति को भी आश्रव बना देती है और सम्यग् दृष्टि उसी विषय को संवर के रूप में-कर्म-मुक्ति के रूप में परिणत कर लेती है। इस सन्दर्भ में आचार्य भगवन् कई बार एक कथा फरमाया करते हैं। वही ऐतिहासिक घटना मैं आपके समक्ष रख रहा हूँ।

एक पंडित जी राजा को हमेशा भागवत् कथा सुनाया करते थे। राजा उन्हें प्रत्येक दिन एक मुहर दिया करते थे। लेकिन अचानक ही उन पंडित जी को बाहर जाने के लिए शादी का निमन्त्रण आ गया। बेचारे बड़ी दुविधा में पड़ गये। क्या करें, अगर न जाएं तो सम्बन्ध टूटने का भय और जाएं तो एक मुहर में कमी पड़ जाए। वे बहुत चिन्तित हो रहे थे। उनके पुत्र ने यह देखा तो पूछा—"पिताजी आप इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हैं ? मैंने भी तो शिक्षा प्राप्त की है, उसका भी तो कोई उपयोग है, आप बताइये किस वजह से आप परेशान हो रहे हैं ?" तब पंडित जी ने कहा—"बेटा वह काम तेरे वश का नहीं है", तो बेटा कहता है कि "आप बताओ तो सही, क्या करना है ?" पंडित जी ने कहा कि "राजा को भागवत् सुनानी है।" पुत्र ने कहा—"ठीक है पिताजी, मैं सुना दूंगा।" दूसरे दिन वह लड़का प्रातः काल उठकर राजा के पास जाता है और उन्हें भागवत् सुनाने की तैयारी करता है। वह उन्हें एक श्लोक सुनाता है—

तिलसर्षपमात्रं च, यो नरो मांसं भक्षति।
स नरो नरकं याति, यावच्चन्द्र दिवाकरो ॥

इस श्लोक का अर्थ उसने राजा को सही-सही बता दिया कि जो तिल व सरसों के दाने जितना भी मांस खाता है, वह नरक में जाता है और तब तक नरक

में रहता है, जब तक सूर्य-चन्द्रमा चमकते हैं। तब राजा अति-क्रोधित होकर कहता है कि इसके सभी पौथी-पत्र बाहर फैंक दो और इसे पकड़ कर बाहर निकाल दो। तब वह लड़का बोला-हे राजन्! अभी तो मैंने अर्थ बताना प्रारम्भ किया है, अभी तो और अर्थ बताना है। आप यह क्या कर रहे हैं? "तब राजा कहता है—"मैंने बहुत सुन लिया, मुझे अब कुछ नहीं सुनना, क्योंकि तुम कहते हो कि जिसने एक तिल व सरसों के दाने जितना भी मांस खाया है, वह नरक में जाएगा। मैंने तो बहुत मांस खाया है, अतः मेरी नरक तो निश्चित है, फिर मैं क्यों एक सोने की मुद्रा खराब करूं? मैंने तो यह बहुत सुन ली, अब और सुनना नहीं चाहता।" वह बेचारा आ गया। कुछ दिनों बाद उसके पिताजी आए और पूछने लगे—"बेटा, काम अच्छी तरह चल रहा है?" बेटा कहता है—"पिताजी मैं तो गया था। मैंने उन्हें एक श्लोक ही सुनाया तब ही वे नाराज हो गये और कहने लगे—"मैंने तो बहुत मांस खाया है; मेरी तो अब नरक निश्चित है। अतः अब मुझे नहीं सुनना भागवत्। अब मैं क्यों एक सोने की मुहर खराब करूँ और ऐसा कहकर उन्होंने मुझे वापिस भेज दिया। "पिताजी ने अपना माथा ठोंक लिया—" अरे मूर्ख, तूने यह क्या किया? राजा को नाराज कर दिया। अब तो हमारी जीविका ही चली जाएगी। वह दूसरे दिन राजा के पास गया तो राजा ने कहा—"हमने तो भागवत् बहुत सुन ली। अब हमें नहीं सुनना है। तुम चले जाओ।" पंडित बहुत अनुनय-विनय करता है—" राजन् एक दिन ही और सुन लो चाहे बाद में न सुनना। राजा कहता है—चलो ठीक है, इतने दिन सुनी है तो अब और एक दिन सही।" पंडित वही श्लोक पढ़ता है, तो राजा कहता है—"यही श्लोक मुझे तुम्हारे पुत्र ने सुनाया था। उसने कहा कि जिसने तिल व सरसों के दाने जितना भी मांस खाया है, वह नरक में जाएगा। तब पंडित जी कहते हैं कि" राजन्! इसका यह अर्थ है कि जिसने तिल व सरसों जितना मांस खाया है वही नरक में जाएगा, जिसने ज्यादा खाया है उसका कुछ नहीं होगा। राजन्! आपने तो बहुत खाया है, अतः आप नरक में नहीं जाएगें।" तब राजा खुश हो जाता हैं और पूछता है कि "मैं तो नरक में नहीं जाऊँगा न? क्योंकि मैंने तो बहुत मांस खाया है।" तो पंडित जी कहते हैं—नहीं, राजन्। आपको कुछ नहीं होगा। राजा खुश होकर उसे एक मुहर दे देते हैं। इस प्रकार पुनः उसकी मुहर शुरू हो जाती है।

देखिए, सोचने-समझने का ढंग किस तरह दो रूपों में परिवर्तित हो गया है। एक ने उसका किस तरह अर्थ बताया और दूसरे ने उसी का किस तरह अर्थ बताया है? किस तरह से सबके सोचने के अलग-अलग तरीके होते हैं?

एक बार उदयपुर के महाराणा गद्दी पर आसीन थे। उनकी आंखों में शूल चलने लग गई। बहुत इलाज कराया मगर कोई लाभ नहीं हुआ। अंत में एक वैद्य ने कहा कि महाराज, कल मैं दवाई बनाकर लाऊँगा। उसने एक जीवित कबूतर

मारकर उसका खून लाकर उससे दवाई बनाई और महाराणा को लाकर दी। महाराणा ने आँख में डाल दी, उन्हें बहुत शान्ति मिली। उन्होंने पूछा कि यह आपनें कैसे बनाई ? यदि आप बता दो तो बहुत व्यक्तियों का भला हो सकता है ? उस वैद्य ने सब कुछ बता दिया तो महाराणा बेहद नाराज हुए और वहां के सभी ज्योतिषियों व पंडितों को बुलाकर पूछा कि एक जीवित कबूतर को मारने का क्या प्रायश्चित है। सबने चुप्पी धारण कर ली, लेकिन राजा ने तलवार निकाली और कहा कि यदि तुम नहीं बताओगे तो मैं अभी तुम्हारा सिर धड़ से अलग कर दूंगा। तब उन्होंने कहा कि कबूतर एक सीधा व निरीह प्राणी हैं। अतः इसकी हत्या का प्रायश्चित तो उबलता हुआ शीशा पेट में उडेलना होता हैं। महाराणा ने उसी समय उबलता हुआ गर्म शीशा मंगवाया और उसे अपने मुँह में उडेल दिया।

देखिए, उस समय के पाप भीरु राजाओं को। वे पाप-कृत्यों से कितने भयभीत रहते थे ? पाप का प्रायश्चित करने के लिए उन्होंने अपने प्राण दे दिए। गर्म शीशा पीने के कारण ही उस वंश का नाम सिसोदिया रखा गया।

लेकिन, आज के राजा क्या कर रहे हैं ? कभी आपने विचार किया है कि जो हमारे यहां से लाखों टन मांस बाहर जाता है, उसका अन्तिम चरण क्या होगा ? उन प्राणियों में से कितने ही निरीह व मूक प्राणी होते हैं। बताइए, यह कैसा भयंकर पाप आप कर रहे हैं ? यह न सोचें कि यह पाप आपको नहीं लग रहा। इस पाप के भागीदार आप भी हैं क्योंकि उन नेताओं को गद्दी पर आप ही बिठाते हैं और किसी न किसी प्रकार व्यवस्था से जुड़े हुए हैं। वास्तव में देखा जाए तो इन निरीह प्राणियों की आह ही आज हमारे देश की अशान्ति का मूल कारण है। कैसी अद्भुत विडम्बना है ? जिसने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा, उसे ही खत्म करने में तनिक भी भय नहीं खाते।

मूल में बात यह है कि हम जो प्रतिदिन कार्य करते हैं, उसका चिन्तन-मनन करें कि हमने क्या कार्य किए हैं ? उनमें कितने उचित है ? कितने अनुचित हैं ? कहीं हम किसी पाप के हिस्सेदार तो नहीं बन रहे ? कहीं हमसे हिंसा तो नहीं हो रही ? इस प्रकार के प्रश्न यदि हम अपने आप से करेंगे तो हमारी आत्मा में एक अद्भुत प्रकाश की ज्योति जगमगाने लगेगी और हम आश्रव को संवर में बदल देंगे। आत्म-जागरण के द्वार से हम परम् आनन्द के द्वार तक पहुँच जाएंगे।

18 अगस्त, 1987

मैं कौन हूं ? कहां से आया हूं ? मेरे क्या कर्त्तव्य हैं ? मैं जन्म, जरा और मृत्यु से किस प्रकार छुटकारा पा सकता हूं ? विचार करें। गम्भीरता पूर्वक चिन्तन करने से शुभ भावों का उदय होगा, अन्त-र्मुखी/सम्यग् दृष्टि बनेंगे और जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

अन्तर्मुखी आत्मा

वीतराग वाणी का परम् पवित्र उद्देश्य है कि प्रत्येक मनुष्य जागृत हो जाए, स्वयं के रूप को समझ ले और अनादिकाल के दुःख-वन्धनों से मुक्त हो जाए। हम और आप जानते हैं कि व्यक्ति साधना इसलिए करता है कि वह परमसुख, परम शान्ति चाहता है, क्योंकि संसार में वह चारों तरफ दुःख से घिरा हुआ है। जन्म-मरण ही दुःख का मूल कारण है। वैसे शास्त्रकारों ने चार प्रकार के दुःखों का उल्लेख किया है—

जन्मं दुक्खं जरा दुक्खं,
रोगाणि मरणाणि य।
अहो दुक्खीं हु संसारो,
जत्थ किस्सन्ति जन्तुणो॥

—उतराध्ययन सूत्र

इन चार दुखों में दुःख का मूल हेतु है–जन्म मरण और यही संसार परिभ्रमण का कारण भी है। इन दुःखों से मुक्त होने के लिए ही जागरण की चर्चा की जा रही है।

अभी आप जिसे जागरण कहते हैं, वह वास्तव में जागरण नहीं है। जिस दिन हमारी आत्म-चेतना का जागरण होगा, उस दिन हम अन्तर्मुखी हो जायेंगे। शास्त्रकारों ने तीन प्रकार की आत्मा वताई हैं।

वाह्य आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा।

जो आत्मा भौतिक सुखों में लीन रहती है और उसे ही सर्वस्व मान लेती है, उसे वहिरात्मा कहते हैं। इसे मिथ्यादृष्टि आत्मा भी कहते हैं। आचारांग सूत्र में भगवान महावीर ने कहा है—"सुत्ता अमुणी मुणिणोसया जागरन्ति" जो सोया हुआ है' अर्थात् आत्मा के प्रति सजग नहीं हैं, वह अमुनि है–संसारी है अथवा वहिरात्मा है और जो जीव अपने स्वयं के प्रति जागृत होता है, जिसे आत्म-चेतना के कल्याण के लिए साधना में रस आता है, जिस आत्मा ने जन्म-मरण को समझ लिया है, वह आत्मा अन्तर्मुखी आत्मा कहलाती है। उसे ही अन्तरात्मा कहते हैं। अन्तरात्मा की सबसे मुख्य पहचान है कि वह आत्मा की सत्ता और पुनर्जन्म को स्वीकार करता है। पुनर्जन्म को सिद्ध करने के लिए हमें कहीं वाहर जाने की आवश्यकता नहीं

हैं। आज के मानव में जो मेरे-तेरे तथा गरीब-अमीर के भेदभाव की जो खाई है वह आज की ही स्थिति से नहीं हो सकती हैं। आज विज्ञान भी मानता है कि किसी भी कार्य के पीछे कारण होता है।

कई वार हम देखते हैं कि कहीं-कहीं दो संतानें एक साथ उत्पन्न होती हैं। उन्हें सभी कुछ समान मिलता है—प्यार, व्यवहार, वातावरण, शिक्षा, सोसायटी एवं सुविधाएँ आदि सभी कुछ व्यवस्थाओं के समान होने पर भी एक तो वहुत धनी वन जाता है और एक साधारण व्यक्ति ही रह जाता है। एक प्रतिभाशाली वैज्ञानिक वन जाता है और दूसरा वुद्धू रह जाता है। इसमें वर्तमान का हमें कोई कारण दिखाई नहीं देता। इन सब के पीछे पुनर्जन्म का ही कोई न कोई कारण होता है।

जो आत्मा अन्तर्मुखी आत्मा होती है, वह यह चिन्तन मनन करती है कि मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? मेरे क्या कर्तव्य हैं ? मैं इन कर्त्तव्यों के प्रति सचेत हो जाऊं ताकि मुझे जन्म-मरण से छुटकारा मिल जाए। इस तरह से अन्तर्मुखी आत्मा अपने आप में रमण करती है।

इसलिए प्रभु ने हमें सन्देश दिया है कि हम वाह्य आत्मा से ऊपर उठकर अन्तर्मुखी हो जाएं तो हमारा जीवन सफल वन जाएगा। जो व्यक्ति इस तरह का होगा उसके चारों तरफ सच्चरित्रता और नैतिकता का वायुमण्डल होगा।

40-45 वर्ष पूर्व की यह एक सत्य घटना है। एक युवक था। वड़ा ही सत्यनिष्ठ व ईमानदार था। वह वम्बई में जौहरी वाजार में जवाहरात की दलाली का कार्य करता था। उस युवक की प्रामाणिकता के कारण सेठ उसे लाखों का माल देते थे। उसकी चारों तरफ प्रशंसा होने लगी। वड़े ही व्यवस्थित तरीके से वह अपना कार्य करता था। अनैतिकता और वेईमानी उससे वहुत दूर थी। एक वार वह एक सेठ का माल लेकर वाजार से निकला और दूसरे सेठ को देने के लिए जा रहा था।

रास्ते में उसे एक सज्जन दिखने वाला व्यक्ति मिला और कहा कि मुझे अपनी पत्नी के लिए एक हार खरीदना है। यदि तुम्हें हीरे की पहचान हो तो मुझे चलकर परख करा दो, मैं लेना चाहता हूँ। तव उस युवक ने कहा कि मेरे पास हार हैं, तुम देख लो और मुझे उसके पैसे दे दो। उसने वह हार उस व्यक्ति को दिखा दिया। तव उसने कहा कि चलो तुम घर चलो, वहाँ मैं अपनी पत्नी को भी दिखा दूंगा और तुम्हें पैसे भी वहीं दे दूंगा। उसने कहा—ठीक है और वह उसे टैक्सी में विठाकर ले गया। खार, दादर, अंधेरी आदि कई स्टेशन आ गए और आखिर में वह टैक्सी जंगल की ओर दौड़ने लगी। अव उस युवक को सन्देह होने लगा कि मैं तो कहीं फंस गया हूँ। यह कोई गलत आदमी है। वह पूछता है कि भई, तुम मुझे कहाँ ले जा रहे हो ? तव वह व्यक्ति जो कि एक डाकू था, उस युवक के सामने पिस्तौल निकाल लेता है और कहता है

कि चुप रहो, वरना मैं तुम्हें खत्म कर दूंगा। आखिर टैक्सी जंगल में एकबहु-मंजिली इमारत के पास जाकर रुक गई। वह डाकू उस युवक को ऊपर ले जाता है और बिठा देता है। उससे कहता है–तुम यहां रहना मैं अभी आता हूँ। वह डाकू चला जाता है। वह युवक नीचे जाता है वहाँ डाकुओं का सरदार होता है। वह कहता है "तुम नीचे क्यों आए ?" तो उस युवक ने कहा—"पानी पीना है।" उसे पानी पिला दिया गया। जब वह वापस जाने लगा तो उसने पहली मंजिल का दरवाजा बन्द कर लिया। फिर ऊपर जाकर दूसरी मंजिल का दरवाजा बन्द कर लिया, लेकिन किसी को आभास नहीं हुआ। फिर वह तीसरी मंजिल पर जाता है उसका दरवाजा भी बन्द कर लेता है। वह जिस कमरे में था उसमें एक रोशनदान था और चारों तरफ मुंडेर थी। वह उस मुंडेर पर उतर जाता है। वह सोचता है चाहे मरे या जिए, कुछ न कुछ तो करना ही होगा। क्योंकि नहीं तो मेरी ईमानदारी व नैतिकता पर कलंक लग जाएगा। वह सेठ समझेगा कि मैं हार लेकर भाग गया हूँ। वैसे भी यह डाकू मुझे जिन्दा तो छोड़ेगा नहीं। क्यों न एक बार रक्षा का प्रयास कर लिया जाए ?

संयोग देखिये कि जिस समय वह व्यक्ति मुंडेर पर उतरता है, उसी क्षण एक अनाज का ट्रक जा रहा था। वह उस पर कूद जाता है और बेहोश हो जाता है। ट्रक वाले ने सोचा कि कोई डाकू इस पर कूद गया है। वह एक पारसी बाबा का ट्रक था, वह मालिक साथ में ही था। उन्होंने चालक से कहा कि "इसे कहीं रोकनी नहीं है। चाल तेज कर दो। सीधे जोगेश्वरी थाने के पास ले जाकर रोकना।" ट्रक सीधा जोगेश्वरी थाने के पास जाकर रुका। उन्होंने थाने में जाकर कहा कि मेरे ट्रक में कोई डाकू कूद गया है। फिर उस ट्रक पर जाकर देखते हैं कि एक व्यक्ति बेहोश पड़ा है। वे उसे होश में लाते हैं। और पूछना चाहते हैं, तब वह कहता है कि आप मुझे पहले उस सेठ के पास पहुँचा दें, मैं उसे उसका माल दे दूं फिर मैं सब कुछ बता दूंगा। वे उसे उस सेठ के पास ले जाते हैं। तब वह कहता है कि सेठजी मैं आपका यह माल नहीं बेच सका। तो सेठजी उससे कारण पूछते हैं। वह सारी कहानी सुना देता है। उस समय पारसी बाबा उसके साथ आये थे। जौहरी व पारसी बाबा हक्के-बक्के रह गए। उस युवक ने पारसी बाबा का बड़ा उपकार माना। यदि आपकी ट्रक में नहीं गिरता तो मैं वहीं मर जाता। पारसी बाबा ने कहा कि मैंने कुछ नहीं किया। सब कुछ भगवान की इच्छा से हुआ है। भगवान का उपकार मानो। जौहरी ने कहा कि तुम्हारी सत्य-निष्ठा व नैतिकता ने ही तुम्हारी रक्षा की है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति सत्यनिष्ठ, नैतिक, चरित्रवान होता है, उसकी रक्षा उसका मनोबल ही करता है। मैं आपको आत्म जागरण की बात

बता रहा हूँ कि हम अपनी आत्मा के प्रति सजग हो जाएं। हम अपनी साधना को निष्काम बनाते हुए अपने मार्ग पर आरूढ हो जाएं।

हमारे मन में अनेक अशुभ भावों का समावेश होता हैं, जिससे कर्म वन्धन होता है। इसलिए हम सचेत हो जाएं तो हमारा जीवन सफल हो जाएगा, क्योंकि इसमें तस्करों लुटेरों—सभी विषय विकारों के प्रविष्ट होने के तो बहुत रास्ते हैं, मगर निकलने के रास्ते बहुत कम हैं। बहुत कम विचार ही हमारी प्रेरणा के स्त्रोत बनते हैं। आत्मा को शुद्ध व पवित्र बनाने के लिए सामायिक, संवर, निर्जरा ही महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। बहुत कम ही ऐसी प्रवृत्तियां होती हैं जो हमें शुद्धता की शिक्षा देती हैं। इसका प्रमुख कारण है कि हम सोये हुए हैं, जागृत नहीं हैं। आवश्यकता है अपने दृष्टिकोण को परिवर्तित कर अपने जीवन में परिवर्तन लाने की। यदि हम वीतराग द्वारा बताये गए मार्ग पर चलेंगे तो हम निश्चय ही जागृत हो जाएंगे। वह जागृति हमें जन्म-मरण से मुक्त कर देगी। वह युवक व्यवहार के तल पर चरित्रशील बना—नैतिक दृष्टि से जागृत हुआ तो उसका प्रभाव सर्वत्र पड़ा। उसकी प्रामाणिकता ने उसे बहुत आगे बढ़ा दिया, ऊँचा उठा दिया। यदि हम आत्मा की दृष्टि से थोड़े भी जागृत हो जाएं तो कर्म वन्धन के द्वारों से बचकर जन्म-मरण से मुक्त होने में कोई विलम्ब नहीं लगेगा।

19 अगस्त, 1987

श्रेष्ठ का ही अपभ्रंश है सेठ। जिस मनुष्य में सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, नैतिकता, परोपकार आदि की भावनाएं हो, वही श्रेष्ठ है, अन्यथा वह श्रेष्ठ (सेठ) कहलाने का हकदार नहीं है। आज कितने श्री सम्पन्न लोग इस कोटि में आते हैं?

श्रेष्ठता को पहिचानें

यह सर्व विदित है कि संसार के समस्त प्राणियों में मानव जीवन ही श्रेष्ठ है। संसार के जितने प्राणी हैं वे सभी साधना नहीं कर सकते हैं। यहां तक देवता भी साधना करने में मनुष्य की तरह स्वतन्त्र नहीं है। इस दृष्टि से संसार के समस्त प्राणियों में मानव जीवन ही सर्वश्रेष्ठ है।

लेकिन साथ में यह प्रश्न उठता है कि मानव जीवन को ही इतना श्रेष्ठ क्यों माना गया है, जबकि वह तो कोई आश्चर्य चकित करने वाला कार्य नहीं करता है? शास्त्रकारों ने भी मानव जीवन को अतिदुर्लभ व श्रेष्ठतम माना है।

मानव जीवन की श्रेष्ठता का आगमिक आधार तो यही है कि इसके आधार पर मुक्ति साधना की जा सकती है। और यह अनन्त पुण्यों के संयोग से प्राप्त होता है। आत्मा के परिपूर्ण विकास तक पहुँचने का मानवीय तन ही एक साधन है।

जिन्होंने अपने स्वरूप की पूर्णता को प्राप्त कर लिया है, वे संसार से मुक्त हो चुके हैं, और उन्हें सच्चा सुख प्राप्त हो जाता है। फिर भी मानव जीवन किस तरह से श्रेष्ठ है, यह गहन विचार का विषय है। क्या यह आत्मा रक्षण की दृष्टि से श्रेष्ठ है? या स्वार्थ की दृष्टि से श्रेष्ठ है? या परोपकार की दृष्टि से श्रेष्ठ है? यदि हम इन प्रश्नों का समाधान प्राप्त करें तो हमें यह ज्ञात होगा कि यह मानव ही एक ऐसा प्राणी है जो कि अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

पूर्ण लक्ष्य प्राप्त करना जीव मात्र का उद्देश्य है। लेकिन यह लक्ष्य उसी व्यक्ति को प्राप्त हो सकता है जो कि दीर्घ दृष्टि रखता हो, जिसका लक्ष्य प्राणी मात्र का सहयोग करना है। तब ही मनुष्य का जीवन श्रेष्ठ कहलाएगा, अन्यथा वह श्रेष्ठतम कहलाने का अधिकारी नहीं होगा। यदि सामाजिक दृष्टि से मानव जीवन को श्रेष्ठ माना जाय तो मधुमक्खियाँ भी अपने जीवन क्रम को बड़े व्यवस्थित ढंग से चलाती हैं, उनमें सभी का अलग अलग कार्य क्षेत्र निर्धारण किया हुआ है। कोई छत्ता बनाती हैं, कोई घर की देखभाल करती है और कोई सफाई करती है। इस तरह उनका जो जीवन क्रम है, वह बड़ा ही व्यवस्थित है। अतः पारिवारिक या सामाजिक दृष्टि से तो उनका जीवन आज के मानव से श्रेष्ठ ही सिद्ध होगा।

अतः हमारे मन में यह होना चाहिए कि हम कितना सत्कार्य कर सकते हैं ? और हमें क्या करना चाहिए ? हम कितना दूसरों के लिए सहयोग कर सकते हैं ? मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो चाहे वह कार्य कर सकता है और अपनी गति को सुधार सकता है।

लेकिन आज के मनुष्य को इस सन्दर्भ में कोई ज्ञान नहीं है। उसे नहीं पता कि मुझे आत्म-साधना हेतु क्या करना चाहिए ? मेरा क्या उद्देश्य है ?

जीव स्थाई एवं पूर्ण सुख की प्राप्ति के लिए तरसता है। लेकिन फिर भी वह दुःखों के जाल में उलझा हुआ है। इसका प्रमुख कारण उसकी अज्ञानता है। अज्ञान की तीव्रता के कारण उसे आत्म जागरण का आभास नहीं होता हैं। वह बाह्य पदार्थों में ही सुख की खोज करता है। उसे अपने अतरंग का कोई भान नहीं रहता। लेकिन जब अज्ञान कुछ कम होने लगता है तो उसे आभास होता है कि बाह्य पदार्थों में वास्तविक सुख प्राप्त नहीं होता है।

लेकिन आज के युग में बहुत कम इन्सान ऐसे होंगे जो इसके महत्त्व को समझें और अपने जीवन में अपनाने का प्रयास करें।

एक डालफिन मछली तालाब में रहती थी। वहां एक अंग्रेज आता है। वह मछली किनारे पर आ जाती है और उसे उस अंग्रेज से स्नेह हो जाता है। एक दिन वह अंग्रेज नहीं आता है, वह डालफिन मछली उसका इन्तजार करती है, दूसरे दिन वह फिर आती है, लेकिन दूसरे दिन भी वह अंग्रेज नहीं आता है। फिर तीसरे दिन वह मछली ऊपर आती है। लेकिन उस दिन भी वह अंग्रेज नहीं आता है तो वह मछली उसके विरह में प्राण त्याग देती है। चौथे दिन जब वह अंग्रेज आता है तो देखता है कि उसने अपने प्राण त्याग दिए हैं।

देखिए, उस जानवर के मन की संवेदनात्मक भावना को, जिसने एक प्राणी के विरह में अपने प्राण त्याग दिए। बताइए, आप में से कितने इन्सान ऐसे होंगे जो कि इस प्रकार की भावना रखते हैं, जिनमें इस प्रकार की संवेदनात्मक भावना होती है या जो परोपकार के लिए प्रयत्नशील है ?

बम्बई की बात है। वहाँ एक गुजराती व्यक्ति व्यवसाय के लिए गया। वह एक सेठ के यहाँ काम करता था। सेठ वैष्णव धर्म मानने वाला था। जो व्यवसाय के लिए गया, वह युवक जैन था। वह बड़ा ही सत्यनिष्ठ व ईमानदार था। उसकी ईमानदादारी से सेठ बहुत खुश था। आस-पास में भी उसकी ईमानदारी की प्रशंसा होने लगी। बड़े ही व्यवस्थित तरीके से वह अपना कार्य करता था। बेईमानी और अनैतिकता जैसी अनुचित आदतें उससे बहुत दूर थी।

लेकिन उसके एक नियम था, वह हमेशा ही चोविहार करता था। सुबह खना खाकर आता और शाम को नवकार मंत्र बोलकर फिर पानी पीता था।

फिर सूर्यास्त से पहले ही चरम पच्चक्खाण करता था। वह शाम को भोजन नहीं करता, क्योंकि उसकी सायंकाल तक की सर्विस थी। एक दिन सेठ ने पूछा कि आप शाम को पानी पीने से पहले हाथ जोड़कर क्या करते हो? तब उन्होंने कहा कि कोई भी वस्तु खाने से पहले नवकार मंत्र का उच्चारण करता हूं। फिर मैं पानी पीकर चरम पच्चक्खाण कर लेता हूं। उसके बाद मैं पानी भी नहीं पीता हूं। तब सेठ जी ने पूछा—"आप फिर शाम को भोजन नहीं करते हैं?" युवक ने कहा—"नहीं शाम को मेरी सात बजे तक की ड्युटी है, और मुझे शाम को खाने की आदत भी नहीं। सेठजी ने कहा—भोजन के लिए चले जाया करो, तब युवक ने कहा कि आपकी मुझ पर बहुत कृपा है। मैं आपका बहुत एहसानमन्द हूं। लेकिन मैं शाम को भोजन करने नहीं जाऊंगा, क्योंकि मेरा यह उसूल नहीं है कि मैं तनख्वाह पूरी लूं और काम आधा करूं। फिर मुझे दो समय भोजन की आवश्यकता नहीं रहती है। मुझे तो अब एक समय भोजन की आदत हो गई है। इसी से मैं स्वस्थ रहता हूं।

तब सेठ भी अपना सायंकाल का भोजन दुकान पर ही मंगवा लेते और सूर्यास्त से पहले ही भोजन कर लेते और युवक को भी अपने साथ भोजन करवा देते।

मालिक व नौकर के सम्बन्ध पारिवारिक होने चाहिए। यदि मालिक नौकर के प्रति आत्मीयता रखेगा तो नौकर भी मालिक के लिए पूर्ण रूप से समर्पित हो जाएगा।

देखिए, उस समय के नौकर व मालिक के सम्बन्ध किस प्रकार के थे? सेठ अपने नौकर के प्रति कितनी संवेदना रखते थे? और आज कितने लोग अपने नौकरों के साथ ऐसा व्यवहार करते हैं? ऐसा व्यवहार करना तो दूर, वे उसे बात-बात में अपमानित करने से नहीं चूकते हैं। उस युवक की प्रामाणिकता व धर्मनिष्ठता को देखते हुए सेठ ने उसे अपने व्यापार में हिस्सेदार बना दिया। उसके बाद जब सेठ वृद्ध हो गया तो वह व्यापार उसे ही सौंप दिया। उस व्यक्ति की सत्यनिष्ठा व ईमानदारी ने उसे कहां तक पहुंचा दिया। आज बहुत ही कम लोग इस तरह से सत्यनिष्ठ व ईमानदार होते होंगे।

मूल बात यह है कि मनुष्य किस तरह श्रेष्ठ है? जिस मनुष्य में सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, नैतिकता, परोपकार आदि भावनाएं हो वही श्रेष्ठ है, अन्यथा वह श्रेष्ठ कहलाने का हकदार नहीं है।

आप मानव जीवन की श्रेष्ठता के मानदण्डों को समझें और सही अर्थों में श्रेष्ठता का वरण करें। आप नाम से तो श्रेष्ठ हैं ही, क्योंकि आप सेठ कहलाते हैं और श्रेष्ठ शब्द से ही अपभ्रंश होकर सेठ शब्द बना है। तो अब नाम से नहीं, काम से ही श्रेष्ठ बनने का प्रयास करें, ताकि मानव जीवन की श्रेष्ठता को किन्हीं तर्कों से सिद्ध करने की आवश्यकता ही न पड़ें।

20 अगस्त, 1987

"हम भौतिक साधनों को जुटाने और अधिकाधिक अर्थोपार्जन करने की दौड़ में इतने अधिक लिप्त हो गये हैं कि प्रायः चौबीसों घण्टे हमारी क्रियाएं उन्हीं पर केन्द्रित रहती हैं, और हम कल का काम भी आज ही निपटा लेना चाहते हैं, लेकिन धर्म-साधना अथवा परोपकार का काम कल पर छोड़ते हैं और वह कल कभी नहीं आता, 'काल' ही आता है। तब हमारा यह जीवन व्यर्थ हो जाता है।"

काल करे सो आज कर

आप और हम सभी यह जानते हैं कि यह जीवन अमूल्य है। इसके एक पल की कीमत लाखों-करोड़ों रुपये व्यतीत करने पर भी नहीं आंकी जा सकती है। जीवन के जो क्षण व्यतीत हो गये हैं उन्हें किसी कीमत पर भी वापस नहीं ला सकते हैं, चाहे हम कितना ही प्रयास क्यों न करलें। शास्त्रकारों ने कहा है—

जाजा वच्चई रयणी,
न सा पडिणियत्तई।
अहम्मं कुणमाणस्स,
अफला जन्ति राईओ ॥

—उत्तराध्ययन सूत्र

जो रात्रियाँ व्यतीत हो गई, वे वापस नहीं आ सकती हैं। अधार्मिक व्यक्ति की वे रात्रियाँ यों ही निष्फल चली जाती हैं।

जरा विचार करें, हम जीवन में क्या कर रहे हैं? जिन कार्यों के लिए हम समर्पित हैं, क्या उनसे हमें कोई लाभ हैं? क्या हम कभी विचार करते हैं कि हमारे 24 घण्टे किस रूप में व्यतीत हो रहे हैं? हम 24 घण्टे जो व्यतीत करते हैं क्या उन्हें इस रूप में व्यतीत करना उचित है?

हम धर्म-साधना के लिए कितना समय देते हैं? जो कार्य धन से सम्बन्धित होते हैं वे तो आप तुरन्त कर लेते हैं, चाहे खाना ही क्यों न खा रहे हों? कोई आकर सूचना दे दे कि अमुक पार्टी आई है, उससे अपने को इतना लाभ होने वाला है तो आप खाना भी छोड़ देंगे। पहले वह कार्य करने के लिए जायेंगे। लेकिन जहाँ धर्म-साधना, आत्म-कल्याण की बात आती है, उसे आप कल पर छोड़ देते हैं। कैसी विडम्बना है? इंसान स्वयं के लिए भी कुछ नहीं करना चाहता है। सिर्फ भौतिक पदार्थों की तरफ दौड़ता चला जाता है और बंधनों में बंधता जाता है। नीतिकार ने कहा है कि—

फलमिच्छन्ति पुण्यस्य पुण्यं न कुर्वन्ति मानवाः ।
फलं नेच्छन्ति पापस्य, पापं कुर्वन्ति मानवाः ॥

पुण्य का फल चाहते हैं, लेकिन पुण्य करना नहीं चाहते हैं। पाप का फल नहीं चाहते हैं, मगर पाप करते चले जाते हैं। फिर विशेषता यह कि पाप के कार्यों को बहुत खुश होकर किया जाता है, उन्हें कल पर नहीं डाला जाता है, जबकि धर्म-साधना और पुण्य के कार्यों को कल पर डाल दिया जाता है। जबकि ज्ञानियों का कथन है कि कल क्या होगा, इसका भी कुछ पता है ? कल जीवित रहेंगे भी कि नहीं ?

भर्तृहरि के वैराग्य शतक में कहा गया है कि एक सरोवर में एक कमल पर एक भँवरा बैठा है। वह कमल का रसास्वादन कर रहा है। वह भँवरा बिना किसी चिन्ता के बैठा है। उसकी यह भावना है कि मैं जितना रस इससे प्राप्त कर सकता हूँ, कर लूं। लेकिन सूर्यास्त होने के साथ ही वह कमल बन्द हो जाता है और वह भंवरा भी उसी में बन्द हो जाता है।

उसमें शक्ति भी है और चाहता तो वह निकल भी सकता था। लेकिन वह निकलता नहीं है। वह सोचता है—सूर्योदय होगा तब मैं फिर निकल जाऊंगा। यह कल्पना करता हैं कि रात्रि व्यतीत होगी, सुबह होगी, प्रभात वेला आएगी और यह कमल खिलेगा, तब मैं निकल जाऊंगा।

इसी कल्पना के बीच एक गजराज वहां आता है और सरोवर से पानी पीकर, वहां जल क्रिया करते हुए उस कमल नाल को वह अपनी सूंड से उखाड़ कर दूर पटक देता है। देखिये, जो भंवरा कल्पना में झूम रहा था, वह हमेशा के लिए ही अपनी जिन्दगी से हाथ धो लेता है। क्योंकि न तो अब वह कमल खिलेगा और न ही वह समय आएगा कि वह उससे बाहर निकल जाए। इसी बात का चित्रण भर्तृहरि ने अपने वैराग्य शतक में किया हैं।

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम् ।
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्री ॥
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे,
हा ! हन्त-हन्त ! नलिनी गज उज्जहार ।'

चिन्तन करिये उस मधुकर जैसी ही दशा आपकी तो नहीं हो रही है ? आपकी दौड़ भी निरन्तर विषय सुखों के आस्वादन में लगी रहती है या धन कमाने में लगी रहती है कि थोड़ा और थोड़ा और। इतने में काल रूपी हाथी आता है और आपकी जीवन रूपी कमल नाल को उखाड़ कर फेंक देता है। और थोड़ा और धन जोड़ने की तृष्णा मन की मन में रह जाती है।

अमेरिका में एक धन कुबेर था। वह अपने धन का हिसाब करने के लिए एक दिन अपनी तिजोरी में जाता है। दो-तीन घण्टे तक हिसाब करता रहता है। वह तिजोरी काफी बड़ी और ऑटोमेटिक बन्द होने वाली थी। जब दो-तीन घण्टे बाद उसका पूरा हिसाब हो जाता हैं तो वह उसे खोलने का प्रयास करता है। किन्तु अन्दर से खोलने की चावी बाहर रह जाती है। अब वह खुलती नहीं है। वह जोर-जोर से आवाज देता है लेकिन उस समय संयोग से कोई घर में नहीं था। उसे बहुत प्यास लग रही थी, आखिर उसने एक कागज पर लिखा कि जो मुझे इस समय एक गिलास पानी दे दे, मैं उसें अपनी समस्त सम्पत्ति दे दूंगा। यह लिखकर वह तो मर जाता है।

विचार करने का विषय है कि किस तरह यह धन का व्यसन इंसान में लगा हुआ है ? इंसान मरणासन्न होने पर भी इसका मोह छोड़ नहीं सकता है। यद्यपि आप यह जानते हैं कि वह हमारे साथ नहीं आने वाला है, वह हमारे बन्धन का ही कारण है, फिर भी आप उसी में बंधते चले जाते हैं। रात-दिन उसी के लिए दौड़ते रहते हैं। यह भी एक प्रकार का व्यसन है। इंसान को अनेक प्रकार के व्यसन लगे रहते हैं। सात दुर्व्यसन तो प्रमुख रूप से गिनाए ही गये हैं, किन्तु इनके अलावा भी अनेक व्यसन हैं। व्यसन का अर्थ है किसी भी हेबिट या बुरी आदत को पाल लेना। राजनीतिज्ञों को पूछिये उन्हें व्यसन लग जाता है राजनीति का तो वह छूटता नहीं है। वे स्वयं बोलते हैं—महाराज, राजनीति का नशा चढ़ने के बाद उतरना कठिन होता है।

इसी प्रकार का धन का नशा होता है। ऐसे ही अनेक नशे हैं जो आदमी को बुरी तरह जकड़ लेते हैं।

बम्बई में एक प्रसिद्ध डॉक्टर के पास एक मरीज को ऑपरेशन के लिए ले जाया गया। डॉक्टर ने ऑपरेशन किया। वह अच्छी तरह से हो गया, लेकिन मरीज को पुनः होश नहीं आया। डॉक्टर बहुत घबरा गया और उसके परिवार वाले भी घबरा गये। अन्त में जब बहुत प्रयास के बाद भी उसे होश नही आता है, तब डॉक्टर को अचानक ही कुछ ध्यान आता है। वे उसके परिवार वालों से कहता है कि इसे कोई व्यसन तो नहीं है। तब उसके परिवार वाले कहते हैं कि डॉक्टर साहब यह पूछो कि इसे कौनसा व्यसन नहीं है ? वे कहते हैं कि इसे सब व्यसन लगे हैं, किन्तु सिगरेट का व्यसन इसे सब व्यसनों में गम्भीर रूप से लगा हुआ है। डॉक्टर ने तुरन्त सिगरेट मंगवाई और उसे जलाकर उसका धुंआ उसके नाक में प्रविष्ट कराया। जैसे ही वह धुंआ आगे तक गया वह व्यक्ति तुरन्त उठकर बैठ जाता है और कहता है कि भाई साहब, एक सिगरेट तो मुझे भी दे दीजिए।

देखिए, ऐसे ही व्यसन लगते हैं—इंसान को। ऐसे वह अपना यह जन्म और दूसरा जन्म, दोनों को ही बरबाद करता है, और इस तरह जिन्दगी व्यतीत

हो जाती है। जिस तरह भंवरा कमल में बन्द हो जाता है और वह आने वाले सूर्योदय की कल्पना में अपना जीवन व्यतीत कर देता हैं, लेकिन वह सचेत नहीं होता है। हमें चिन्तन, मनन व विश्लेषण करना होगा कि हमारा जीवन किन कार्यों के प्रति समर्पित है और हमें क्या करना चाहिए ? हमें अपनी दिनचर्या का आत्म-चिन्तन करना चाहिए कि हम अपनी आत्मा के प्रति इन्साफ कर रहे हैं या नहीं ? दिन-रात में 24 घण्टे होते हैं। उनमें से यदि हम एक घण्टा भी सही अर्थ से आत्म-चिन्तन करें, धर्म साधना में लगाएं तो हमारे 23 घण्टे के कार्य गौंण हो जायेंगे। हमें सच्ची आत्मानुभूति व चरम-सुख की प्राप्ति हो सकती है। लेकिन साधना निःस्वार्थ-निष्काम होनी चाहिए।

21 अगस्त, 1987

"यदि आपका पैसा चला गया तो कुछ भी नहीं गया, स्वास्थ्य गिर गया तो कुछ नुकसान हुआ, लेकिन यदि चरित्र नष्ट हो गया तो सब कुछ नष्ट हो गया। लक्ष्मी आती जाती छाया है, उसके लिये परेशान होने की जरुरत नहीं। मेहनत करेंगे तो आज से कल ज्यादा कमा सकेंगे। स्वास्थ्य में आई गिरावट से पूर्व स्थिति में लौटना थोड़ा दुष्कर है। लेकिन चरित्र नष्ट-भ्रष्ट हो गया तो उस कलंक को कभी नहीं मिटाया जा सकेगा।"

चरित्र ही सब से बड़ा धन

भाव विशुद्धि का परम् आध्यात्मिक पर्व पर्युषण हम मना रहे हैं। पर्वों का महत्त्व यही नहीं है कि हम इन सुअवसरों पर अपना बाह्य अवलोकन करें, बल्कि इन पर्वों को मनाने का सही रूप होगा अन्तरावलोकन।

अन्तरावलोकन का अर्थ है—अपनी आत्मा को शुद्ध करने का प्रयास करना। वैसे तो हम स्वच्छ नजर आते हैं। किन्तु हमारे भीतर राग, द्वेष, क्रोध आदि कूट-कूट कर भरे हैं, जिनको कि चर्म चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता। इन चर्म चक्षुओं से तो बाह्य अवलोकन किया जा सकता है कि कौन व्यक्ति कैसा है? यह अच्छा है, वह बुरा है, आदि। किन्तु. अन्तरावलोकन के लिए हमें दिव्य ज्योति चाहिए और उस दिव्य ज्योति को प्राप्त करने के लिए ये आठ दिन पर्युषण पर्व के हैं, जिनमें कि हम बाहरी दुनियां से हट कर आत्म साधना कर सकते हैं। राग, द्वेष, मोह, ममता की पर्तों को नष्ट करके आत्मा को कर्मों के आवरण या उसके बोझ से हल्का बना सकते हैं।

हम बाहर से अधिकाधिक जुड़ते जा रहे हैं, किन्तु अन्तर से परे हटते जा रहे हैं, विमुख होते जा रहे हैं। अत: इन पर्वो को मनाने का सही तरीका अन्तरावलोकन ही होगा। हमारे विचार कैसे बनते जा रहे हैं? विचारों का उतार-चढ़ाव होता रहता हैं। विभिन्न विचारों के व्यक्ति होते हैं और उनके विचार भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। एक वस्तु के लिए अलग-अलग व्यक्ति अलग-अलग भाव बना लेते हैं। जैसे कहीं जंगल में एक कुटिया है और वहां से विभिन्न व्यक्ति गुजरते हैं, तो उस कुटिया को सभी अपनी-अपनी दृष्टि से देखकर अलग-अलग भावना बनाते हैं।

कोई महात्मा उधर से गुजरते हैं, तो वे सोचेंगे कि यह कुटिया साधना के लिए उपयुक्त हैं, और उसी कुटिया को यदि एक चोर देखता है, तो वह उस कुटिया को चोरी का धन छिपाने के लिए उपयुक्त मानता है। उसी प्रकार एक थका-हारा राहगीर उसे अपने लिए उपयुक्त विश्राम स्थल मानता है। इस प्रकार व्यक्ति अपनी भावना के अनुसार शुभाशुभ कर्मों का बन्धन कर लेता है। उसी प्रकार एक जामुन का पेड़ है, और जामुन खाने वाले छ: व्यक्ति हैं। छ: व्यक्तियों के जामुन खाने के अलग-अलग तरीके हैं। जैसे एक व्यक्ति कहता है, इस जामुन के पेड़ को काट लेना

चाहिए । फिर दूसरा व्यक्ति कहता है कि हमारे को तो जामुन ही खाना है, तो फिर पेड को क्यों काटें, क्यों न इसकी बड़ी-बड़ी शाखाएं काट डालें ? इस पर तीसरा व्यक्ति बोलता है, इसकी बड़ी शाखाओं को काटने से क्या मतलब ? जामुन खाने के लिए तो उसकी छोटी-छोटी डालियां ही काटनी चाहिए । इस पर चौथा व्यक्ति अपना मत व्यक्त करता है कि हमें न बड़ी और न छोटी डालियों को काटनी चाहिए, हमें तो इस पर लगे हुए फलों के गुच्छे ही तोड़ लेने चाहिए । पांचवा व्यक्ति अपना सुझाव रखता है, कि जामुन ही खाने हैं, तो इस पेड़ से पके हुए जामुन ही तोड़ लेते हैं, क्योंकि हम कच्चे जामुन तो खाएगें नहीं । अन्तिम छठा व्यक्ति बोलता है कि भाईयों, अपने को जामुन ही खाने हों तो कुछ तोड़ने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इस पेड़ के नीचे बिखरे हुए जामुन ही हमारे खाने के लिए पर्याप्त हैं ।

देखिए, सभी का उद्देश्य एक है कि हमें जामुन खानें हैं, किन्तु उनको प्राप्त करने के तरीके अलग-अलग हैं, उनके विचारों में भिन्नता है । इन्ही शुभाशुभ विचारों को लेश्या कहते हैं । इन्हीं विचारों की भिन्नता या लेश्या के कारण मनुष्य स्वर्ग या नर्क प्राप्त करता है ।

वैसे मनोवैज्ञानिकों ने भावना के चार अंग बताए हैं :—

भावना चार है (1) आसुरी (दानवी) (2) मानवी (3) देवी (4) ब्रह्म

1. आसुरी भावना :—

इस प्रकार की भावना रखने वाला व्यक्ति वह है, जो यह मानता है कि मेरा है वह तो मेरा है, किन्तु तेरा है वह भी मेरा है ।

2. मानवी भावना :—

इस प्रकार की भावना वाला वह व्यक्ति होता है जो यह मानता हैं कि जो मेरा है, वह मेरा है और जो तेरा है, वह तेरा हैं ।

3. देवी भावना :—

इस प्रकार की भावना रखने वाला व्यक्ति यह मानता है कि जो तेरा है वो तेरा है और जो मेरा है वह भी तेरा है ।

4. ब्रह्म भावना :—

इस प्रकार की भावना वाला व्यक्ति यह मानता है कि न मेरा है और न तेरा, यह सब क्षणिक है, साथ में कुछ नहीं आएगा ।

यह पर्व हमें यह सन्देश देते हैं कि हम जितनी भाव शुद्धि कर सकें उतनी अपनी आत्मा को विशुद्ध बनाते चले जाएं । किन्तु आज की स्थिति बिल्कुल भिन्न है । अपनी आत्मा की किसी को चिन्ता नही और दूसरों को सुधारने की कोशिश करते हैं । हमें जरा भीतर झांक कर देखना चाहिए कि हमारे भीतर में क्या-क्या भरा पड़ा है ? भीतर झांकने के लिए दिव्य नैत्रों की आवश्यकता होगी । हमारे अन्दर भावनाओं अम्बार पड़ा है । आज ऐसे लोग बहुत कम मिलते हैं जो कि आत्म-चिन्तन, मनन

करते हों। किन्तु, दूसरी ओर वे लोग अधिक मात्रा में मिल जाएंगे जो दूसरों की निन्दा/हंसी में अपना समय बर्बाद करते हों। उनकी यह धारणा बनी रहती है कि किस प्रकार आपस में प्रेम से रह रहे दो व्यक्तियों के बीच संघर्ष कराया जाय, उन्हें अपमानित किया जाय, उन्हें अपने स्तर से नीचे गिराया जाय।

एक सेठ थे। उनके दो लड़के थे। दोनों में अटूट प्रेम था। संयोग देखिए कि जितना प्रेम उन दोनों भाईयों में था, उससे अधिक प्रेम उनकी बहुओं (पत्नियों) में था।

सेठजी के यहां एकता होने से घर में लक्ष्मी तो थी ही साथ ही घर में प्रेम भी बढ़ रहा था। दोनो भाई साथ-साथ रहते, साथ ही खाते। उन्हें देख कर सेठजी बहुत खुश थे। यह उनके संस्कारों का प्रभाव था। उन्हें बचपन से संस्कार ही ऐसे मिले थे।

बच्चों को जैसे संस्कार दिये जाएं वैसे ही बन जाते हैं। वे जैसा देखते हैं, वैसा ही करते हैं। उनके जीवन को जैसे ढाला जाए, उसी तरह वे ढल जाते हैं। आज के बच्चे टी. वी. देखते हैं वैसी ही एक्टिंग करते हैं, वैसे ही उनके आचरण बनते जाते हैं। यह सब संस्कारों का प्रभाव है। आज कल प्रायः हर घर में लड़ाई-झगड़े कलह तो सामान्य दिनचर्या बन गई है।

एक अध्यापक इतिहास पढ़ा रहे थे। उन्होंने विद्यार्थियों से प्रश्न किया कि बच्चों विश्व में सबसे बड़ा विश्व युद्ध कब हुआ और कौन सा हुआ? सभी बच्चे मौन रहे तो अध्यापक ने फिर पूछा। इस पर भी उत्तर न मिला तो अध्यापक ने फिर तीसरी बार पूछा। इस बार एक लड़का डरते हुए खड़ा हुआ और बोला-गुरुजी, मालूम तो हैं, किन्तु बताने की मनाई है? अध्यापक ने कहा—"पागल किसने मना किया है? इतिहास इसीलिये तो पढ़ाते हैं कि तुम याद रखो कि कौन सा युद्ध कब हुआ है? बालक ने कहा कि मैं बता तो देता हूँ, किन्तु आप किसी को मत बताना। अध्यापक बोला—डरने की क्या बात हैं, बताओ। इतिहास तो युद्धों से भरा पड़ा है। सभी याद करने पड़ते हैं। इस पर लड़का धीरे से बोला कि "सबसे बड़ा युद्ध मेरे मम्मी-पापा में होता है, लेकिन आप किसी को कहना मत।"

देखिये, आज हमारी क्या हालत हो रही है? बच्चों को कैसे संस्कार मिल रहे हैं? वे तो बड़ों का अनुकरण करते हैं। ऐसी इतिहास में हजारों घटनाएं मिलती हैं।

गुरु गोविन्द सिंह के चार लड़के थे। दो युद्ध में शहीद हो गये और दो फतह सिंह और जोरावर सिंह रहे। उनको कहा गया कि तुम अपना धर्म छोड़कर इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लो, वरना तुम्हें दीवार में चुन दिया जाएगा। इस पर उन वीरों ने बड़ी ही दृढ़ता से उत्तर दिया कि :—

करदे कतल खुशी से, हमको उजर नहीं है।
प्यारा धर्म अपना, जितना कि सर नहीं है ॥

अगर इसी जगह आपको खड़ा कर दिया जाय तो आपका उत्तर क्या होगा ? क्या यह नहीं होगा कि हम अपना धर्म छोड़ सकते हैं, किन्तु हमें छोड़ दो। क्योंकि आप अपना जीवन चाहते हैं। इतना तो छोड़िये पर आप अपने धर्म को चार रुपये में बेच देते हैं।

वे भी आखिर बालक ही तो थे। क्या उनको अपना जीवन प्यारा नहीं था ? उनको अपने जीवन से प्यारा धर्म था। यह संस्कारों का प्रभाव है जो जीते जी दीवार में अपने आपको चुनवा कर धर्म की रक्षा करने को तत्पर हुए।

जब उनको दीवार में चुना जाने लगा और छोटे भाई के गले तक दीवार खड़ी कर दी गई तो उनमें से बड़े भाई की आंखों से पानी गिरने लगा। उसकी आंखों में पानी गिरते देख कर उससे पूछा गया कि तुम्हारे आंसू क्यों टपक रहे हैं ? इस पर उसने उत्तर दिया कि मेरे छोटे भाई से पहले मेरे आगे दीवार चुन दो क्योंकि मैं अपनी आँखों से अपने भाई की हत्या नहीं देख सकता, अत: आप पहले मेरे आगे दीवार चुनिये।

देखिये उन बच्चों को भी संस्कार मिले होंगे। उन बच्चों की वीरता, भावनाओं की अड़िगता को देखिए।

हम महावीर की सन्तान कहलाते हैं, लेकिन जरा विचार करके देखिये कि हम महावीर की सन्तान कहलाने योग्य हैं या नहीं ? अभी हमारे सामने से एक चूहा भी निकल जाए तो हमारे अन्दर उथल-पुथल मच जाएगी।

सेठजी की बात चल रही थी। सेठजी विचार करते हैं कि अभी तक तो इन भाइयों में बहुत प्रेम हैं, साथ-साथ रहते हैं, किन्तु समय और परिस्थितियाँ सब कुछ बदल देती हैं। अत: यह सोचकर उन्होंने अपने दोनों बेटों को पास बुलाया और कहा कि पुत्रों, वैसे तो तुम्हारे अन्दर इतना प्रेम हैं, फिर भी विषम परिस्थितियों को देखते हुए हो सकता है कि तुम्हारे अन्दर बंटवारे की भावना आ सकती है, लेकिन मैं यह नहीं चाहता कि तुम बंटवारा करो। अत: मेरे सामने यह प्रतिज्ञा करलो कि हम कभी अलग-अलग नहीं होंगे, हम कभी इस जायदाद का बंटवारा नहीं करेंगे। इस पर पुत्रों ने कहा कि पिताजी क्या आपको हमारे प्रेम पर विश्वास नहीं है ? हमारा प्रेम अटूट है, फिर भी आप चाहते हैं तो हम प्रतिज्ञा कर लेते हैं। यह कह कर पुत्रों ने अपने पिता के सामने प्रतिज्ञा कर ली। सेठ को शान्ति हो गई। कुछ दिनों बाद सेठ परलोक सिधार गये।

पुत्रों का जीवन पूर्ववत् चल रहा था। उनका प्रेम दिन दूना रात चोगुना बढ़ता जा रहा था किन्तु आप जानते हैं कि संसार में बहुत से लोग विघ्न सन्तोषी होते हैं। उन्हें किसी का प्रेम सहन नहीं होता। प्रेम को तोड़ने में ही उन्हें रस आता

हैं। जिसे आपकी भाषा में नारद विद्या कहते हैं। ऐसा ही एक व्यक्ति उनके पडौस में रहता था, जिससे उन भाइयों के परिवार का आपसी प्रेम देखा न गया। वह ऐसा उपाय सोचने लगा कि उन भाईयों के प्रेम को तोड़ा जा सके। उनके आपसी प्रेम में असन्तोष की दीवार खड़ी की जा सके।

आखिर एक दिन वह एक उपाय सोच ही लेता है। वह उनमें से छोटे भाई के साथ मित्रता स्थापित कर लेता है।

मित्रता होने के कुछ दिन पश्चात्, वह उस छोटे भाई से कहता है कि सभी कारोबार तुम्हारे भाई के ना से चल रहा है, सभी कार्यभार उनके हाथ में है, हो सकता है किसी दिन तुम्हें खाली हाथ घर से निकाल दे। यह सुनकर उस छोटे भाई को आवेश आ जाता है। वह कहता है—खबरदार जो मेरे भाई की बात मेरे सामने आगे से कभी की तो। मेरे भाई साहब कैसे हैं, उनका मेरे ऊपर कितना प्रेम हैं, यह तो मैं ही जानता हूं।

उस समय तो वह मित्र चुप हो जाता हैं, किन्तु कुछ समय बाद फिर कहता हैं—देख मित्र, मै तुम्हें सही कह रहा हूं। मित्र होने के नाते मेरा यह कर्तव्य है कि मैं तुम्हें सही रास्ता बताऊं। मैंने पूरी जानकारी कर ली है। तेरे भाई साहब अपनी पूंजी अलग बना रहे हैं। इस बार उस छोटे भाई का क्रोध अधिक भड़क उठता हैं और वह अपने मित्र को बुरा-भला कह देता हैं। किन्तु वह मित्र चुप रहता हैं।

दुष्ट अपनी प्रकृति भला कब बदलते हैं? वे तो एक के बाद एक प्रयत्न करते हैं। किसी भी प्रकार अपना मनोरथ पूर्ण करने में लगे रहते हैं।

इसी प्रकृति का वह मित्र कुछ दिन बाद फिर उसे कहता है—मित्र देख मैं तुम्हें सही बात बता रहा हूं, अगर तू उनसे अलग नहीं होना चाहता है तो मैं तुझे 10,000 रुपये देता हूँ, जिससे तुम अपने नाम से अलग दुकान खोल लो। दुकान, नौकर चला लेंगे, तुम सिर्फ कभी-कभी जाकर अपनी दुकान देखते रहना और हिसाब करते रहना।

आखिर बात उस भाई को लग गई, वह सोचने लगा, यह सही कह रहा हैं और साथ में पूंजी भी तो दे रहा है। अपना क्या जाता है, एक दुकान खोल लेंगे। उसने अपने मित्र को हां भर दी।

मित्र मन ही मन प्रसन्न हुआ। आखिर अन्धा क्या चाहता है, दो आंखें। बस उसका मनोरथ पूर्ण हो गया। उसने उस छोटे भाई को दस हजार रुपये दे दिये और दुकान खुलवा दी। दुकान अच्छी तरह चलने लगी। थोड़े ही दिनों में उसकी ख्याति बढ़ गई, बिजनेस बढ़ गया।

समय गुजरता जा रहा था। एक दिन डाकिया छोटे भाई की दुकान की चिट्ठी बड़े भाई को देकर जाने लगा तो उस बड़े भाई ने कहा—"भाई यह हमारी फर्म के नाम की चिट्ठी नहीं हैं, इस नाम की हमारी कोई फर्म नहीं हैं।" डाकिया

कहता है—"नहीं यह तुम्हारे छोटे भाई की दुकान की चिट्ठी हैं और उन्हीं की फर्म का नाम है।" बड़ा भाई चिट्ठी ले लेता है।

जब दोनों भाई खाना खाने बैठते हैं तो वह बड़ा भाई कहता है—भैया! तुम्हारी यह चिट्ठी कहाँ से आई हैं, क्या तुमने कोई अलग दुकान खोल रखी है? कम से कम एक बार मुझे भी पूछ तो लेते।

इतना सुना तो छोटा भाई भड़क उठा। उसने कहा—"हाँ, चिट्ठी मेरी है और दुकान के लिये मैंने पूँजी घर से नहीं लगाई हैं। बड़ा भाई कहता है—भाई मैं यह कब कह रहा हूं कि तुमने यहां से पूँजी ली है, पूँजी की आवश्यकता हो तो पूँजी तो और ले जाओ, मुझे कोई ऐतराज नहीं, किन्तु मैं तो यही कह रहा हूँ कि तुमने जो दुकान खोली हैं, उसकी जानकारी मुझे भी दे देते तो अच्छा रहता। इससे छोटा भाई और भी ज्यादा क्रोधित हो उठा। कहने लगा—"जब मैंने पूँजी ली ही नहीं और आप कहते जा रहे हैं कि और पूँजी ले जाओ, मैं एक पल भी आपके साथ में नहीं रहना चाहता हूँ। मुझे अलग कर दीजिए, सम्पति का बंटवारा कर दीजिए।"

देखिए, जो अपने भाई के बिना खाना तक नहीं खाता था, एक घंटा भी भाई को देखे बिना नहीं रह सकता था, आज वही अलग होने की बात कर रहा है।

बड़ा भाई उसे बहुत समझाता है, भैया, मैं तुम्हें आज के बाद इस विषय में कभी नहीं पूछूंगा. किन्तु तुम अलग होने का नाम मत लो। लोग हमें राम-लक्ष्मण की जोड़ी कहते हैं—कल वे क्या कहेंगे? लोग कहें या न कहें, तुम उस प्रतिज्ञा को तो याद करो, जो हम दोनों ने पिताजी के समक्ष ली थी। छोटा भाई कहने लगा, "गई पिताजी की प्रतिज्ञा उनके साथ। मैं नहीं मानता उस प्रतिज्ञा को, किन्तु मुझे अलग होना है; मुझे आपके साथ नहीं रहना हैं।

आखिर भाई को हार माननी पड़ी। सभी चीजों की दो लिस्टें बनाई गई, जायदाद के बंटवारे की सूचियां बनी।

इधर दोनों भाईयों की पत्नियां उन भाईयों की जोर से बोलने की आवाज सुनकर सोचती है, आखिर बात क्या हैं? ये कभी इतने जोर से बोलते नहीं, यह सोचकर दोनों उनके पास आती है और आकर पूछती है "आज क्या हुआ है, आप दोनों इतनी जोर-जोर से क्यों बोल रहे हैं?" ये सूचियां क्यों बनाई है?

बड़ा भाई कहता है—"ये सूचियां हमारे बंटवारे की है। क्या करुं मैंने तो भैया को बहुत समझाया है, वह मानता ही नहीं। कहता है मैं तो अलग होकर ही रहूंगा।"

इतना सुनते ही छोटे भाई की पत्नी उससे कहती है—"अलग होना है तो आप अलग हो जाईये, मैं तो अलग होने वाली नहीं। मैं भाभीजी को छोड़कर नहीं जा सकती हूं।

जब छोटा भाई जाने लगा तो बड़ें भाई के मन में काफी उथल- पुथल मच गई। उसने सोचा कि आज हमारा अटूट प्रेम टूट जाएगा, पिताजी के समक्ष की गई प्रतिज्ञा टूट जाएगी............नहीं, मैं ऐसा नहीं होने दूंगा। सहसा उसके दिमाग मे एक कल्पना आई और उसने अपने छोटे भाई को आवाज दी, जो अपने पसन्द की सूची लेकर दरवाजे तक जा चुका था। आवाज सुनकर छोटा भाई पुनः अन्दर आ जाता है। वड़ा भाई कहता हैं—"मुझे सम्पत्ति का बंटवारा नहीं करना हैं, पिताजी के सामने की गई प्रतिज्ञा को मैं नहीं तोड़ सकता, यह सारी प्रोपर्टी (जायदाद) तुम्हारी है। मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं तो अपनी पत्नी व बच्चों को लेकर घर छोड़कर चला जाऊंगा और यदि तुम चाहो तो मुझे मुनीम रखलो, मुझे मेरी तनखवाह दे देना जिससे मेरी पत्नी व बच्चों का पालन-पोषण कर लूंगा, किन्तु पिताजी की सम्पत्ति का बंटवारा नहीं होने दूंगा। यह कह कर वह अपनी पत्नी को जेवर उतारने को कहता है कि "तुम अन्दर जाकर यह कीमती कपड़े व जेवर उतार कर सादे कपड़े पहन लो।" पत्नी अन्दर जाती है और जेवर उतारने लगती है, तभी छोटे भाई की पत्नी वहां पहुंचती है और उसके हाथ पकड़ लेती है, रोने लग जाती है और कहती है आप यह क्या कर रही हैं? मैं ऐसा कभी नहीं होने दूंगी।

ऐसा दृश्य देखकर छोटे-भाई का हृदय पसीज जाता है। उसे स्वयं पर ग्लानि होने लगती है। वह सोचता है कि मेरे भाईसाहब ऐसे नहीं हैं, जैसा कि मेरा मित्र कहता था। वे तो मेरे लिये सब कुछ छोड़ने को तैयार है, यह सोचकर वह बड़े भाई के चरणों में गिर जाता है और कहने लगता है—"भैया मुझे माफ कर दो, मैंने बहुत बड़ी गलती की है, मैं आपसे माफी चाहता हूं।" बड़े भाई ने उसे उठा लिया और गले से लगा लिया। भाईयों, पत्नियों, बच्चों सभी की आंखों से अश्रु वह रहे थे और छोटा भाई कह रहा था—"अब मैं आपसे अलग नहीं होऊंगा।" वे पुनः प्रेम से रहने लग जाते हैं और उनका प्रेम अधिक बढ़ जाता है।

लेकिन सोचिये, उस तीसरे व्यक्ति को क्या मिला, जिसने उनके प्रेम को तोड़ने की कोशिश की? उसको हानि व कर्म बन्धन के अलावा और कुछ नहीं मिला। किन्तु बहुत से लोगों की ऐसी प्रकृति होती है। उन्हें दूसरों का आपसी प्रेम सहन नहीं होता है और उन्हें परचर्चा में ही रस आता है।

अपनी आत्मा का निरीक्षण करने का समय उनके पास नहीं है। वे कभी अपनी आत्मा को नहीं टटोलते हैं, जिसमें इतना राग, द्वेष, कषायों का कूड़ा-कचरा भरा पड़ा है।

यदि इस समय हमने धर्म-ध्यान नहीं किया, आत्मसाधना नहीं की तो समय निकलने पर हाथ में कुछ नहीं रहेगा, सिवाय पश्चाताप के। समय बहुत मूल्यवान है, इसे व्यर्थ मत गंवाइये।

हम हमेशा उपदेश सुनते हैं, उपदेश सुनते-सुनते वर्षों हो गऐ है लेकिन उसका

क्या परिणाम निकला ? जब तक इन व्याख्यानों-उपदेशों को अपने जीवन में नहीं उतारेंगे, आचरण में नहीं उतारेंगे, कोई लाभ नहीं। आप समय के मूल्य को समझें और इसका सदुपयोग करें। समय के सदुपयोग का अर्थ है—आप अपने आचरण-चरित्र को विशुद्ध बनाए रखें।

चरित्र ही सबसे बड़ा धन है। चरित्र ही व्यक्ति का सब कुछ है, जिसके पास चरित्र है, उसने सब कुछ पा लिया है। यदि आपका पैसा चला गया तो कुछ भी नहीं गया, स्वास्थ्य गिर गया तो कुछ नुकसान हुआ, लेकिन यदि चरित्र नष्ट हो गया तो सब कुछ नष्ट हो गया। लक्ष्मी आती जाती छाया है, उसके लिये परेशान होने की जरूरत नहीं। मेहनत करेंगे तो आज से कल ज्यादा कमा सकेंगे। स्वास्थ्य में आई गिरावट से पूर्व स्थिति में लौटना थोड़ा दुष्कर है। लेकिन, चरित्र-नष्ट-भ्रष्ट हो गया तो उस कलंक को कभी नहीं मिटाया जा सकेगा।

यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि जिसके पास अपना चरित्र है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता है। दुनिया की प्रत्येक ताकत को उसके सामने झुकना पड़ेगा। आज राष्ट्र पर जो विभीषिका छा रही है, उसका मूलकारण है—राष्ट्रीय चरित्र का ह्रास। हमारा राष्ट्रीय चरित्र सुस्थिर हो तो कोई देश हमारी ओर आक्रामक दृष्टि से नहीं देख सकता। यहां तक कि अणु आयुधों को भी चरित्र शक्ति के समक्ष शान्त हो जाना पड़ेगा।

23 अगस्त, 1987

—:—

"मन ही बंधन का कारण है और मन ही मुक्ति का कारण। हमारे जैसे विचार होंगे, वैसे ही शुभ-अशुभ कर्मों का बंध होगा। विचारों के सहारे ही हम उन्नति के शिखर पर पहुंच सकते हैं और विचारों के प्रवाह में ही पतन के गर्त में डूब सकते हैं। हमारे विचार शुद्ध/सात्विक हों तो हमारा आचरण/कार्य सब कुछ श्रेष्ठ ही होगा। आत्म-कल्याण के मार्ग को यह पहली सीढ़ी है।"

क्या परिणाम निकला ? जब तक इन व्याख्यानों-उपदेशों को अपने जीवन में नहीं उतारेंगे, आचरण में नहीं उतारेंगे, कोई लाभ नहीं। आप समय के मूल्य को समझें और इसका सदुपयोग करें। समय के सदुपयोग का अर्थ है—आप अपने आचरण-चरित्र को विशुद्ध बनाए रखें।

चरित्र ही सबसे बड़ा धन है। चरित्र ही व्यक्ति का सब कुछ है, जिसके पास चरित्र है, उसने सब कुछ पा लिया है। यदि आपका पैसा चला गया तो कुछ भी नहीं गया, स्वास्थ्य गिर गया तो कुछ नुकसान हुआ, लेकिन यदि चरित्र नष्ट हो गया तो सब कुछ नष्ट हो गया। लक्ष्मी आती जाती छाया है, उसके लिये परेशान होने की जरूरत नहीं। मेहनत करेंगे तो आज से कल ज्यादा कमा सकेंगे। स्वास्थ्य में आई गिरावट से पूर्व स्थिति में लौटना थोड़ा दुष्कर है। लेकिन, चरित्र-नष्ट-भ्रष्ट हो गया तो उस कलंक को कभी नहीं मिटाया जा सकेगा।

यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि जिसके पास अपना चरित्र है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता है। दुनिया की प्रत्येक ताकत को उसके सामने झुकना पड़ेगा। आज राष्ट्र पर जो विभीषिका छा रही है, उसका मूलकारण है—राष्ट्रीय चरित्र का ह्रास। हमारा राष्ट्रीय चरित्र सुस्थिर हो तो कोई देश हमारी ओर आक्रामक दृष्टि से नहीं देख सकता। यहां तक कि अणु आयुधों को भी चरित्र शक्ति के समक्ष शान्त हो जाना पड़ेगा।

23 अगस्त, 1987

—:—

"मन ही बंधन का कारण है और मन ही मुक्ति का कारण। हमारे जैसे विचार होंगे, वैसे ही शुभ-अशुभ कर्मों का बंध होगा। विचारों के सहारे ही हम उन्नति के शिखर पर पहुंच सकते हैं और विचारों के प्रवाह में ही पतन के गर्त में डूब सकते हैं। हमारे विचार शुद्ध/सात्विक हों तो हमारा आचरण/कार्य सब कुछ श्रेष्ठ ही होगा। आत्म-कल्याण के मार्ग की यह पहली सीढ़ी है।"

जाको रही भावना जैसी

पर्युषण के आठ दिनों में हमारा प्रयास यह रहता है कि हम वाह्य यात्रा से हटकर अन्तर-यात्रा करें, स्वदेश में रमण करें, आत्म-प्रदेशों में रमण करें। ये सम्पूर्ण संदेश हमें वीतराग वाणी के द्वारा प्राप्त होते हैं। वीतराग भगवन्तों ने प्रत्येक प्राणी को आत्म-जागरण का ही संदेश दिया है—"हे मनुष्य, तुम्हें यह जीवन बड़े पुण्ययोग से मिला है। अब तुम इस जीवन को व्यर्थ मत गंवाओ, यह बार-बार मिलने वाला नहीं है।" उनकी वाणी जो अपने जीवन में उतार लेता है, वह अपना जीवन सफल बना लेता है।

लेकिन विचारने का विषय यह है कि आज हम अपने जीवन में धर्म को किस रूप में ग्रहण करते हैं? हम चर्चा करते हैं कि साधना, धर्माराधना ऐसी होनी चाहिये वैसी होनी चाहिए, मगर हम अपने अन्तर में झांककर नहीं देखते हैं कि हमारा आचरण कैसा है? हमारी धर्माराधना के अनुरूप हमारा आचरण है या नहीं?

हर बार पर्युषण पर्व आते हैं। हम हर बार भगवान की वाणी सुनते हैं, आत्मा-परमात्मा की चर्चा सुनते हैं। हम आत्मिक प्रकाश की चर्चा करते हैं, पर इसके लिए हम कितने क्षण निकालते हैं? समय निकालना तो दूर, आप वीतराग की वाणी को एक तरफ से सुनते हैं और दूसरी तरफ से निकाल देते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि आप उस वाणी को अन्तर से ग्रहण नहीं करते है। जिस प्रकार शेरनी का दूध केवल सोने के पात्र में ही टिकता है, उसी प्रकार वीतराग की वाणी को ग्रहण करने के लिए साधनागत उद्देश्य की आवश्यकता होती है। अधिकांश धार्मिक व्यक्ति यह जानते हैं कि इस आत्मा में अनन्त प्रकाश भरा है और वे चाहते हैं कि हमें उस आत्म ज्योति के दर्शन हों। किन्तु बहुत से ऐसे भाई भी हैं जो यह नहीं जानते हैं कि हम साधना क्यों कर रहे हैं। क्या उद्देश्य है हमारी साधना का? आत्मा क्या है? उसका स्वरूप कैसा है? इस जानकारी के अभाव में की जाने वाली साधना का कोई अर्थ नहीं होता है और वह हमें किसी भी लक्ष्य तक नहीं पहुंचाती है।

जब हमें इसका सही ज्ञान होगा तब ही हमें इस वाणी में आनन्द आयेगा और तब ही यह वीतराग वाणी हमारे भीतर टिक सकेगी।

आत्मा की बीमारी को दूर करें—

भगवान की कृपा सभी पर होती है। उनके लिए कोई विशेष नहीं और न ही कोई साधारण होता है। लेकिन जिसके कर्म जैसे होते हैं, वह प्रभु को उसी स्तर पर समझ पाता है। संतों की कृपा भी सभी पर होती है, वे सभी को समान उपदेश देते हैं, किसी व्यक्ति को विशेष रूप से उद्बोधन नहीं देते। लेकिन उनके उद्बोधन को शुद्ध श्रद्धा के साथ ग्रहण कर अपने जीवन में कितने लोग उतार लेते हैं?

आत्मा की बीमारियों को दूर करने के लिए महापुरुषों की कृपा से अमृत की शीतल वर्षा हो रही है। संतों का भी भाव यही होता है कि आत्मा की बीमारी को दूर करने में मददगार बनें। यदि आप उसे ग्रहण करना चाहते हैं, तो सर्वप्रथम आप अपना अंतरंग शुद्ध करिये, जिससे वीतराग वाणी के माध्यम से हमारी आत्मा की बीमारी को दूर किया जा सके।

आत्म चिन्तन करें—

हमें प्रतिदिन कम से कम आत्म-चिन्तन के लिए समय अवश्य निकालना चाहिये कि हमारी आत्मा पर कितने दाग लग रहे हैं? क्या हमने उनको साफ करने का प्रयास किया है? हम उन धब्बों को मिटाने का प्रयास करते हैं जो चेहरे पर और कपड़ों पर लग गये हैं, मगर आत्मा पर जो अनादि काल से धब्बे, अशुभ वृत्तियों के लगे हुए हैं, क्या उनको मिटाने का प्रयास कभी किया है?

यदि आपको इन दागों को साफ करना है तो अपनी सारी दृष्टि स्वयं पर केन्द्रित करनी पड़ेगी, अन्यथा दागों के रहते हुए आपको आत्मिक-सुख की प्राप्ति नहीं होगी।

"मनः एव मनुष्याणां कारणं बंध-मोक्षयोः"

मन ही बंधन का कारण है और मन ही मुक्ति का कारण है। हमारे जैसे विचार होते हैं, वैसे ही बंधन भी शुभ-अशुभ बन जाते हैं। शुभ बंध मुक्ति मार्ग का दिग्दर्शन करते हैं और अशुभ बंध पाप जड़ को दृढ़ कर देते हैं।

जाकी रही भावना जैसी—

बाहर कितना ही जहर क्यों न फैला हो यदि हम शुद्ध हैं, यदि हमारे भीतर किसी प्रकार की कड़वाहट नहीं है तो वह जहर हमारे ऊपर किसी प्रकार का असर नहीं करेगा।

एक बड़ा खेत था। बड़ी-बड़ी घास की ढेरियाँ वहाँ चारों ओर पड़ी हुई थी। इस ढेरी में एक सांप और चूहा रहते थे। सामान्यतया सांप की खुराक चूहे होते हैं। लेकिन यहाँ तो आश्चर्य देखने को मिला कि सांप व चूहे में गहरी दोस्ती है।

एक रोज किसान किसी कार्यवश उसी घास की गंजी के पास गया। हाथ डालते ही सांप ने उसे काट लिया। लेकिन उसी समय ढेरी में से चूहा बाहर निकल आया। अतः किसान को चूहे ने काटा है—यह कल्पना हो गई। उसके मन में किसी क की घबराहट पैदा नहीं हुई।

थोड़े दिनों के बाद, किसान पुनः उसी ढेरी के पास आया। उस दिन चूहे ने काटा, लेकिन उसी समय सांप बाहर निकला। इससे उसे सांप ने काट खाया ऐसी तीव्र भ्रमणा उसके मन में पैदा हो गयी। वह घबराकर जोर से चिल्लाने लगा। सुनकर लोग वहाँ दौड़ आये। बेचारा किसान उसी रात मर गया। देखिए सांप के काटने से जिंदा रहा और चूहे के काटने से मर गया। चूहे ने उसे नहीं मारा, उसकी मौत हुई मन पर लदे हुए भय के जहर से।

मनुष्य की भावनाओं का उसके शरीर पर कितना असर होता है? उसे तो यह भय हो गया था कि मुझे सांप ने काटा है। इस प्रकार ही व्यक्ति के विचार जैसे होते हैं उसे फल की प्राप्ति भी उसी रूप में होती है। यदि हम यह सोचलें कि यह काम मैं कर सकता हूँ—करूँगा, तो वह काम आसानी से हो सकता है। लेकिन यदि यह विचार करलें कि नहीं यह काम मुझसे नहीं होगा, मैं इसे नहीं कर सकता, तो फिर वह चाहे कितना ही सरल कार्य क्यों न हो व्यक्ति उसे नहीं कर सकता है। अर्थात् व्यक्ति के विचारों का उस पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है।

यदि हमारे विचार शुद्ध-सात्विक हों तो हमारा आचरण/कार्य सब कुछ श्रेष्ठ ही होगा। जैसी हमारी भावना होती है, उसी के अनुरूप हमारा कार्य सफल-असफल बनता है।

हम जिस प्रकार के विचार लेकर चलते हैं, वे ही हमारे उत्थान व पतन के कारक बनते हैं। विचारों के कारण ही हम उन्नति के शिखर पर पहुँच सकते हैं और विचारों के प्रभाव में ही पतन के गर्त में डूब सकते हैं। लेकिन हमें यह प्रयत्न करना चाहिये कि हमारे भीतर अशुभ विचारों का प्रभाव नहीं आए। इसके लिए आवश्यकता होगी—चरित्र, निष्ठा, आत्मबल, संयम की। यदि यह सब हम अपने साथ रखेंगे तो हमारे विचार अशुभ प्रवृत्तियों की ओर बढ़ेंगे ही नहीं। अतः यह जरूरी है कि प्रत्येक व्यक्ति के विचारों में शुद्धता आए। यदि हमारे विचार उच्चतम हो जायेंगे तो वातावरण स्वतः ही श्रेष्ठ हो जायेगा।

24 अगस्त, 1987

"आचरण शून्य ज्ञान भार रूप है। हम नियमित रूप से महापुरुषों के प्रवचन सुनें और घर चले जाएं, इसका कोई मतलब नहीं है, यदि हम उनकी वाणी को जीवन में न उतार पाएं। आचरणहीन बुद्धिजीवी चंदन का भार ढोने वाले गधे के समान है।"

जैसी करनी पार उतरनी

आत्म-ज्योति को प्रज्ज्वलित करने के लिए हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर जाना पड़ेगा, असत्य से सत्य की ओर जाना पड़ेगा। पर्व पर्युषण के दिन हमारे लिए शुभ सन्देश लाते हैं कि इन दिनों में हम जागृत हों, आत्म-निरीक्षण करें।

उपनिषद् के ऋषियों ने कहा है—

असतो मा सद्गमय:
तमसो मा ज्योतिर्गमय:
मृत्योर्मा अमृतंगमय: ।

हम असत्य से सत्य की ओर जायें।
अन्धकार से प्रकाश की ओर जायें।
मृत्यु से अमरत्व की ओर जायें।

प्रवृति से निवृति की ओर जायें—यह इन तीनों सूत्रों का सार है। निवृति के सम्बन्ध में कहना बहुत आसान है, मगर करना कुछ कठिन, कथनी व करनी में बड़ा अन्तर होता है। कथन-कथन ही रहता है, जब तक कि उसे आचरण के धरातल पर न उतारा जाय। चर्चा मात्र से कार्य नहीं चलता, उसको आचरण में लाना जरूरी है।

शास्त्रकारों ने ज्ञान या चर्चा पर बल नहीं दिया है, उन्होंने आचरण पर अधिक बल दिया है। आज कहने वाले बहुत मिलते हैं, पर करने वाले बहुत कम। आज ऐसे वक्ता भारी संख्या में मिल जाएंगे, जो अच्छे से अच्छे लेक्चर दे देगें, जनता को मुग्ध कर देगें, लेकिन क्या वे अपने कथन को आचरण में उतार पाते हैं?

एक वक्ता भाषण दे रहे थे अहिंसा पर। भाषण बहुत ही जोश के साथ दे रहे थे। जनता भी बहुत गम्भीरता से उनका भाषण सुन रही थी, तभी वक्ता ने पसीना पोंछने के लिए जेब से रूमाल निकाला तो असावधानी के कारण उनकी जेब से अण्डे गिर पड़े। अब आप ही विचार कीजिए कि उस लेक्चर का, उस भाषण का क्या प्रभाव पड़ेगा?

दूसरों के आचरण को बदलने के लिए कोई आवश्यक नहीं है कि हम चीखें-चिल्लाएं। उसके लिए आवश्यक है हमें जैसा दूसरों का आचरण बनाना है, वैसा पहले

अपने आपका आचरण बनालें। जब तक कथन को आचरण में नहीं उतारा जाएगा, तब तक हमारे कथन का कोई सार नहीं।

हम रोज प्रवचन में आयें, प्रवचन सुनें और घर चले जांए, इसका कोई मतलब नहीं, जब तक हम उसको अपने आचरण में उतारने की कोशिश नहीं करें।

शास्त्रकारों ने आचरण पर बल दिया है न कि चर्चा पर। चर्चा भले ही हम दिन भर करलें, लेकिन आचरण शून्य ज्ञान भार रूप है।

यदि किसी ने शास्त्रों का अध्ययन कर लिया है, वेद-वेदांगों को पढ़ लिया है और त्याग, आचरण साधना के नाम पर रिक्त है तो वह केवल उनका बोझ ढ़ोता है, केवल अपने सिर पर भार लिये फिरता है।

विशेषावश्यक भाष्य में आचार्य भद्रगणि क्षमा श्रमण ने कहा है :—

जहाँ खरो चन्दण भारवाही,
भारस्स भागी न हु चन्दणस्स,
एवं खु नाणी चरणेणं होत्थो,
नाणस्स भागी न हु सोग्गईए ॥

आचरण हीन व्यक्ति ठीक उसी प्रकार है, जैसे चन्दन का भार ढोने वाला गधा, जो कि अपने ऊपर बोझ उठाये फिरता है। लेकिन उसका अपने लिए प्रयोग नहीं कर पाता है।

हमारे जीवन में कितना अंधकार है, हमारे अन्दर राग, द्वेष, क्रोध आदि भरे पड़े हैं, इनकी परतों को हटाकर हमें प्रकाश की ओर गमन करना पड़ेगा।

मानव को बड़े पुण्ययोग से सत्संग मिलता है, महावीर की वाणी मिलती है, शास्त्र श्रवण मिलता है, लेकिन उसके ज्ञान चक्षु बन्द रहते हैं, उसकी आत्मा पर कषायों के मोटे पर्दे रहते हैं। इस कारण उसकी आत्मा पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है और वे शान्ति की तलाश में अनादिकाल से भटकते रहते हैं।

आज संसार में ऐसे बहुत ज्ञानी मिलते हैं जो कि अपने भाषणों से हजारों व्यक्तियों को मन्त्र मुग्ध कर देते हैं लेकिन उनका यह भाषण जीवन कल्याण का नहीं होता। वह भाषण सिर्फ भाषण ही होता है। उनका स्वयं का कोई त्याग, आचरण चरित्र नहीं होता है। अतः उनके भाषण का प्रभाव भी नहीं पड़ता है और अगर पड़ता भी है तो क्षणिक पड़ता है। लेकिन उससे किसी का जीवन नहीं बदल सकता।

अंधकार से प्रकाश की ओर जाने के लिए अनेक रास्ते हैं, अनेक मार्ग हैं। हमें कषायों को जीतना होगा। अपने जीवन को समतामय बनाना होगा।

हमें अशान्ति नहीं, शान्ति चाहिए, अंधकार नहीं, प्रकाश चाहिए लेकिन हम पुरुषार्थ नही कर सकते और पुरुषार्थ नहीं करना चाहते तो यह बात कैसे सम्भव हो है?

यह पर्व पर्युषण हमें प्रवृत्ति से हटकर निवृत्ति की ओर अग्रसर होने का संदेश देता है।

प्रवृति क्या हैं ? जो हमारे रोजमर्रा के कार्यक्रम होते हैं, जिनसे कर्म-बन्धन होते हैं, चाहे वे शुभ कर्म हों या अशुभ कर्म हों, ये सभी बन्धन के कारण ही हैं। हमें प्रवृति से निवृति की ओर प्रयाण करना है। इन दिनों का हमारे लिए यह शुभ संकेत है। संयम में निवृति होती है और असंयम में प्रवृति। आज की प्रवृति प्रायः असंयम की प्रवृति है।

सूत्रकृतांग में भगवान महावीर ने फरमाया है कि :—

न कम्मुणा कम्म खवेन्ति बाला,
अकम्मुणा कम्म खवेन्ति धीरा।

कर्म से कर्म का क्षय नहीं होता है, अकर्म से ही कर्म का क्षय होता है। अकर्म का मतलब है—सांसारिक जीवन से मुक्त होना और इसे ही प्रभु ने निवृति मार्ग के नाम से सम्बोधित किया है।

प्रवृति चाहे शुभ हो या अशुभ दोनों ही बन्धन का कारण होती है। आप कहेंगे वह कैसे है ? शुभ कर्म भी बन्धन के कारण हैं और अशुभ कर्म भी बन्धन के कारण है ?

"पुण्य बंध पाप बंध दुह में भुगति नाहीं।
कटुक-मधुर स्वाद पुग्गल को पेखिये।"

"शुभ पुण्यस्य, अशुभ पापस्य"। शुभ कर्मों से पुण्य संचय होता हैं और अशुभ कर्मों से पाप का संचय होता है। यद्यपि ये दोनों ही बन्धन के कारण हैं, अतः मुक्ति प्राप्ति के लिए इन दोनों को ही अपने से अलग करना होगा। पहले हमें पाप कर्म को छोड़ना होगा, फिर हमें पुण्य कर्म को छोड़ना होगा। क्योंकि पुण्य का स्वाद मधुर व पाप का स्वाद कटु होता है। जिस प्रकार यदि कोई हमें मिश्री व नमक का एक-एक टुकड़ा दे दे तो हम उस नमक के टुकड़े को मुँह से शीघ्र ही निकाल देते हैं, लेकिन मिश्री को हम बहुत समय तक तो अपने मुँह में रख सकते हैं। परन्तु हमेशा के लिए उसे अपने मुँह में नहीं रख सकते। ठीक यही स्थिति पाप व पुण्य बन्ध के सम्बन्ध में कही जा सकती है कि जो कटु है, उसे तुरन्त छोड़ दे और जो मधुर है, उसे भी छोड़ दे क्योंकि यह भी एक प्रवृति ही होती है और जब तक हम पूर्णतया प्रवृति मार्ग से निवृति नहीं लेगें तब तक हम मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकेगें।

आचार्य भगवन् कई बार एक उदाहरण फरमाया करते हैं कि एक व्यक्ति को नदी पार करनी है। नदी के किनारे पर दो नावें पड़ी हैं। एक पत्थर की है, दूसरी काठ (लकड़ी) की है। बताइये उसे नदी पार करने के लिए किस नाव पर चढ़ना होगा ? उसे नदी पार करने के लिए काठ की नौका पर ही चढ़ना होगा, क्योंकि जो

पत्थर (शिला) की नाव है, यह पानी पर तैर नहीं सकती और डूब जाएगी। दूसरी जो नाव है, वह काठ की है, जो कि पानी पर आसानी से तैर सकती है।

"किन्तु वह काठ की नाव पर चढ़ जाए और बीच रास्ते में, महाघाट में जाकर यह सोचे कि मुझे नाव को छोड़ना तो है ही क्यों न मैं इसे यही छोड़ दूं। यदि वह बीच में ही नाव छोड़ देता है, तो क्या वह नदी पार कर सकता है? नहीं। उसे नदी पार करने के लिए नाव से ही किनारे तक जाना होगा। अगर वह किनारे पर जाकर यह सोचे कि यह नाव का ही उपकार है, जिसने मुझे यहां लाकर छोड़ा है। अब मैं इसे कैसे छोड़दूं तो क्या वह अपने गन्तव्य पर पहुंच सकता है? नहीं। उसे अपने गंतव्य पर पहुंचने के लिए उस नाव को छोड़नी ही पड़ेगी।

ठीक उसी प्रकार संसार रूपी समुद्र है, पाप रूपी पत्थर की नाव और पुण्य रूपी काठ की नाव है। हमें इस संसार रूपी समुद्र से पार होने के लिए पुण्यरूपी नाव पर चढ़ना होगा और गंतव्य स्थान पर जाकर इस पुण्य रूपी नाव को भी छोड़ना होगा। छोड़ना दोनों को हैं, किन्तु क्रम से छोड़ना है। साधना के लिए पुण्य आवश्यक है और जब साधना पूर्ण हो जाती है, तो पुण्य स्वतः ही छूट जाते हैं।

हमें बड़े पुण्य योग से उत्तम कुल, आर्य क्षेत्र, स्वस्थ शरीर, सूत्र वाचन मिला है। लेकिन, फिर भी यदि हम सचेत नहीं होंगे तो हम अपने जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

ये पर्युषण निवृति मार्ग व संवर मार्ग अपनाने का सन्देश देते हैं। लेकिन जरा विचार करिये कि आपने इसकी तरफ कितना ध्यान दिया है? मैं कौन हूं? कहाँ से आया हूँ? मुझे अब यहां क्या करना चाहिए?

आप यह तो भली-भाँति जानते हैं कि आपका समूचा अस्तित्व बन्धनों से बंधा हुआ है। सामाजिक, राजनैतिक, कार्मिक बन्धन और आप यह भी समझ गए होंगे कि जब तक हम प्रवृति पर रहते हैं, तब तक बन्धन से मुक्त नहीं हो सकते। यद्यपि हमारे सामने अनेक बार मुक्ति के प्रसंग आते हैं, लेकिन हमारे ऊपर उनका कोई प्रभाव नहीं होता। उन्हें सुनते-सुनते इतने अभ्यस्त हो गए हैं, जिस तरह मंदिरों पर रहने वाले कबूतर। चाहे कितना भी शोर क्यों न हो, चाहे कितनी ही घंटियां क्यों न बजे, वे, वहां से हटते नहीं हैं। ठीक यही स्थिति आज के मानव की है।

यदि हमें आत्मिक शान्ति प्राप्त करनी है तो हमें प्रवृति मार्ग से हटकर निवृति मार्ग अपनाना होगा। तब ही हमें उस परम् सुख की अनुभूति होगी और हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

25 अगस्त, 1987

"मन को स्थिर करने के लिये विचारों के आवेग को रोकना होगा। यह हो सकता है साधना के द्वारा, अन्तरावलोकन और आत्म-चिन्तन के द्वारा। यदि हमने एक बार भी अन्तर की छवि देख ली, हमें आत्मानुभूति हो गई तो फिर बाहर की चर्चा में रस नहीं आएगा।"

विचारों के आवेग को थामें

हमें बाहर से हटने व अन्तर में रमण करने का संदेश देने के लिए यह पर्युषण पर्व आता है। हम सारे भटकाव को समाप्त करके अपने भीतर की शक्ति की खोज करें कि हमारे भीतर कितनी शक्ति का स्रोत (भण्डार) है? यदि हम एक बार अपने भीतर का मुआयना करेंगे तो फिर बाहर देखने की जरूरत नहीं पड़ेगी।

हमारी चेतना आज से नहीं अनादिकाल से भटक रही है। बाहर की ओर गतिशील है, लेकिन इससे तो हमें अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकेगा। इसके लिए तो हमें उस गति को रोककर एक निश्चित गंतव्य केन्द्र तक पहुँचाना होगा। यदि हमारे मन का गति विभ्रम रुक जाए तो हम अपने लक्ष्य को प्राप्त करके सिद्धगामी बन सकते हैं।

लक्ष्य प्राप्ति का अर्थ है, भ्रमित विचारों का रूकना। लेकिन यह ठहराव कोई सहज नहीं है। हम सोते-जागते हर पल, हर क्षण विचारों के समुद्र में गोते लगाते रहते हैं। इन विचारों के कारण हमारे मन में कई उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। इनके द्वारा कभी हम सुपथ में रमण करते हैं और कभी कुपथ में, लेकिन इतना तो निश्चित ही है कि एक प्रवाह निरन्तर गतिमान रहता है। अब यह प्रश्न उठता है कि इसे रोकने के लिए क्या साधन काम में लिया जाये? इसके लिए जैन-ग्रन्थों में साधनों की विशद् विवेचना की गई है, जिनमें एक प्रमुख साधन पर्युषण पर्वों के रूप में माना गया है। ये अपनी अन्तर-चेतना के अवलोकन के दिन होते हैं, जो हमें अन्तरावलोकन का संदेश देते हैं।

यद्यपि यह भी कहना सत्य है कि हमें प्रारम्भ में आन्तरिक विषय की चर्चा से आनन्द नहीं आता है। लेकिन जब हम इसके गहन अध्ययन में पहुँचते हैं तो हमें इसमें बहुत आनन्द प्राप्त होता है। यह तभी संभव बन सकता है, जब हम अन्दर का आस्वादन करें। यदि हमने एक बार भी अन्तर की छवि देख ली, हमें आत्मानुभूति हो गई तो फिर हमें बाहर की चर्चा में रस नहीं आएगा।

हम यह भी अच्छी तरह से जानते हैं कि संसार बन्धन का कारण है और संसार में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति इन बन्धनों से बंधा हुआ है, कोई भी इससे मुक्त नहीं है। लेकिन प्रभु ने कहा है कि बन्धन का कारण और कुछ नहीं केवल मन, वचन, कर्म ही हैं।

मन की गतिशीलता के कारण ही शुभ-अशुभ कर्मों का संचय होता है। यदि हम अपनी प्रिय वस्तु आत्मा को पकड़ लें तो हमारा लक्ष्य आत्म चिन्तन की तरफ मुड़ जायगा और बंधन स्वतः ही रूक जाएंगे। इसी से हमें अभूतपूर्व सुख की प्राप्ति होगी।

चूंकि हम बाहर की चीजों को ही देखते हैं, इसलिए हमें शान्ति प्राप्त नहीं होती। हम स्वयं की चेतना पर ध्यान नहीं देते हैं। यदि हम अपनी चेतना शक्ति पर ध्यान दें तो हमारे भीतर से अन्तरंग स्वर उठेंगे।

आत्मा स्वयं हम से प्रश्न करेगी। तुम क्या कर रहे हो? तुम कौन हो? तुम्हें क्या करना है? यदि हम आत्मा की इस आवाज को पहचान लेंगे तो हम चिन्तन करेंगे कि वास्तव में हमारा समय किधर जा रहा है? कर्म वन्धन की तरफ जा रहा है या मुक्ति मार्ग की तरफ?

आत्म-चिन्तन का संदेश देने के लिए ही यह पर्युषण पर्व आता है। अतः हमें इस समय जागृत होना चाहिए और अपने कर्मों की निर्जरा के लिए अधिक से अधिक त्याग, तप, साधना करनी चाहिए। सबसे पहले हमें विचारों पर संयम करना होगा, क्योंकि यह बन्धन का प्रमुख कारण है।

विचारों के तीव्र प्रवाह के कारण ही नीतिकारों ने मन को कल्पवृक्ष की संज्ञा दी है। कल्प वृक्ष वह वृक्ष होता है, जिसके नीचे बैठकर जो कुछ मांगा जाता है, वही इंसान को प्राप्त हो जाता हैं।

एक यात्री यात्रा कर रहा था। उसको वहुत लम्बी यात्रा करनी थी। यात्रा करते करते वह एक घने जंगल में पहुंच जाता है। वह वहुत ही भयावह जंगल था। दूर-दूर तक वहां पेड़ पौधों के अलावा कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। तव वह व्यक्ति विचार करता हैं कि यदि कोई सेठ यहां मकान बनवा देता तो यात्रियों के विश्राम के लिए अच्छा स्थान वन जाता। ऐसा विचार करते करते ही वह एक पेड़ के नीचे जाकर वैठ गया। इधर वृक्ष के सामने ही एक भव्य मकान वन जाता है। वह सोचता है कि कहीं मैं सपना तो नहीं देख रहा हूं। वह उस मकान में जाता है और देखता है कि सभी सुविधाएं उपलब्ध हैं। लेकिन भोजन व पानी की व्यवस्था नहीं है। तव पुनः उस पेड़ के नीचे आ जाता है और सोचने लगता है. यदि यहां पर एक वहुत बड़ा वगीचा होता और उसमें फलों से लदे हुए पेड़ होते तो कितना अच्छा होता। शीतल जल के झरने होते।

यह विचार करते ही उस भव्य ईमारत के चारों तरफ वगीचा और झरना दिखाई दिया। वह विचार करता है कि कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूं, क्योंकि अभी मैंने मात्र कल्पना की और यह दिखाई देने लग गया। वह तत्काल वहां जाता है। मीठे फल खाता है और ठंडा पानी पीकर आराम करता है।

दूसरे दिन प्रातःकाल वह उठता है और वहां से रवाना होता है, क्योंकि उसे

आखिर अपने गंतव्य स्थान पर जाना ही था। बाहर आकर देखता है, वहां भयावह जंगल हैं। वह सोचता है कि इसे मैं किस तरह पार करूंगा और यदि यहां शेर आ जाय तो... ......उसके ऐसा विचार करते ही वहां शेर प्रगट हो गया। उसके बाद सोचा यदि मुझे शेर खा जाये तो........और उसके इस तरह विचार करते ही वह शेर उसे खा जाता हैं।

कहने का अर्थ यह है कि शुभ पदार्थों के निकट पहुँचने पर हमारे विचारों में शुद्धता आती है और अशुभ पदार्थों के निकट पहुंचने पर अशुभ विचारों की उत्पत्ति होती है। वह जिस पेड़ के नीचे था वह कल्पवृक्ष था, अतः उसने जैसी कल्पना की वैसा ही उसे प्राप्त हो गया। हमारा मन भी एक कल्प वृक्ष की भांति है, हम जैसा मन में संकल्प करते हैं वैसा ही हमें मिल जाता है। यदि हमारी भावनाएं शुद्ध हैं तो हमें शुभ फल प्राप्त होगा। यदि भावनाएँ अशुभ हैं तो हमें अशुभ फल प्राप्त होगा। यदि हमारा ध्येय जीवन को उच्च बनाना है तो हमें वह लक्ष्य अवश्य ही प्राप्त होगा और यदि विचार गलत है तो वे हमें अवनति की तरफ ले जाएंगे।

मन के कल्प वृक्ष से हम उन्नत विचारों के भव्य प्रासाद खड़े कर सकते हैं, चरित्र की महक वाले उद्यान बना सकते हैं, और कषाय व वासना के शेर को भी बुला सकते हैं, जो हमारे जीवन को ही समाप्त कर दे।

यद्यपि मन पर नियन्त्रण करना भी कोई सहज कार्य नहीं है क्योंकि जो मन लक्ष्य गति की भांति अविरल विचारधाराओं में प्रवाहित रहता है उस मन की साधना निःसन्देह कठिन है लेकिन असम्भव नहीं है। यदि हम ऐसा करने का प्रयास करें, संकल्प करें तो सब कुछ संभव हो सकता है। ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसे हम नहीं कर सकते। फिर यह मन तो हमारा ही है, हम जैसा चाहें इसको बदल सकते हैं।

26 अगस्त, 1987

"कलयुग का जो बहाव है, उसकी विपरीत दिशा पकड़ो। बहाव के साथ बहने में विशेषता नहीं है। वह तो एक तिनका भी कर लेता है। जीवन की विशेषता इस बात में है, जब हम प्रतिस्त्रोतगामी बनें। इसके लिये चाहिये दृढ़ आत्म-बल। हमें अपना आत्म-बल जागृत करना होगा, तभी हम अर्जुन माली के समान आसुरी प्रवृत्तियों का मुकाबला कर स्व-पर कल्याण कर सकेंगे।"

आत्म-बल जागृत करें

हमारी अनादि काल की जो यात्रा है, वह बाह्य यात्रा है। यह यात्रा हमें सुपथ की ओर ले जाने वाली नहीं है। अतः हम इससे हटकर अपना अन्तरावलोकन करें, यह संदेश यह पर्युषण पर्व हमें देता है। यदि हमें जाना कलकत्ता है और हम बम्बई की गाड़ी में बैठ गये तो क्या हम अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँच पाएंगे ? नहीं ठीक उसी तरह हमारा लक्ष्य है—आत्म चेतना के कल्याण का और हम कर रहे हैं, अशुभ बंधन तो बताइये हमें सफलता कहां से प्राप्त होगी ? जहां तक मैं सोचता हूँ आज अधिकांश व्यक्ति इसी स्थिति से गुजर रहे हैं। उनका जो लक्ष्य है, वह उस दिशा में तो नहीं जा रहा है, बल्कि विपरीत दिशा में जाने वाली गाड़ी में बैठा है।

यद्यपि हम इस बात को अच्छी तरह समझते हैं कि हम विपरीत दिशा में जा रहे हैं, किन्तु यह बात वास्तव में हमारे मस्तिष्क में आ जाय तो हम उस गाड़ी से उतर जाएं और सही दिशा में जानेवाली गाड़ी में बैठ जाएं। लेकिन अभी इस चेतना का जागरण नहीं हुआ है। अभी भ्रान्ति में ही जी रहे हैं।

हमें सही दिशा देने, हमारा मार्ग दर्शन करने के लिए ही ये पर्व आते हैं। ताकि हम अपना आत्म-चिन्तन करें तथा स्वयं के जीवन को बदलने का प्रयास करें। यद्यपि यह अन्तरावलोकन सहज नहीं हैं, इसमें बड़ी कठोर साधना की आवश्यकता होती है। वर्तमान में हर क्षेत्र का वायुमण्डल/वातावरण दूषित हो रहा है। ऐसे वातावरण में तो साधना करना भी कठिन हो जाता है, लेकिन यदि हम थोड़ा सा प्रयास करें तो यह असम्भव नहीं है। फिर हमें आत्म-कल्याण करना है तो कठोर साधना भी करनी ही होगी।

आज के मनुष्य का जीवन मशीनी हो गया है। अतः ऐसी स्थिति में उसे साधना/त्याग/आध्यात्म की बातें बड़ी अटपटी लगती है। भले ही यह अनुचित लगें, लेकिन यदि हमने अपनी दिशा नहीं बदली तो हमें शक्ति नहीं मिलेगी और अन्त में पश्चाताप करना पड़ेगा।

आज तो इन्सान की सम्पूर्ण शक्ति कुर्सी और सम्पदा की ओर है। उसकी

दौड़ उसी तरफ हो रही है। वह निरन्तर उधर ही दौड़ता रहता है। लेकिन, यह भी कटु सत्य है कि सत्ता व सम्पदा कभी सुखदायी नहीं होती है। क्योंकि यदि ऐसा होता तो अनेक चक्रवर्ती/सम्राट इस तरह सम्पूर्ण सुख-वैभव को छोड़कर त्याग के मार्ग का अनुसरण क्यों करते ?

वास्तविक सुख तो त्याग व साधना में ही है। यदि थोड़ी ही गहराई का चिन्तन करें तो हमें ज्ञात होगा कि आज इस चिन्तन के लिए समय किसके पास है ? बहुत दुःख होता है, इन्सान अपने आत्म-सुख के लिए तनिक भी ध्यान नहीं देता है, वह तो सिर्फ दौड़ने में ही अपना बहुमूल्य समय व्यतीत कर रहा है।

यदि आप आधा घण्टा ही स्वयं को अकेला छोड़कर सभी से दूर हटकर चिन्तन करें कि—"मैं अकेला हूं, मेरा कोई नहीं है" तो आपको जीवन के वास्तविक सत्य का अनुभव होगा कि वास्तविक आनन्द किस में है ? मुझे क्या करना चाहिए ?

यह कलियुग है। शास्त्रकारों ने पंचम काल को ह्रास काल कहा है, जिसे दूसरे शब्दों में कलियुग भी कह सकते हैं। इस कलियुग का चित्र महाभारत में भी प्रदर्शित किया गया है।

एक बार पाण्डव व कुन्ती वनवास के काल मे जंगल में जा रहे थे। जंगल बहुत घना था—उस समय कुन्ती को प्यास लगी। उन्होंने कहा कि मुझे पानी चाहिए। तब भीम पानी लेने के लिए रवाना हुआ। थोड़ी दूर आने पर स्वच्छ जल का सरोवर दिखाई दिया। वे वहीं गए। उन्होंने देखा—उस सरोवर में कमल खिल रहे थे। उन्होंने सोचा कि पहले मैं यहां हाथ मुंह धो लेता हूं, फिर पानी लेकर चला जाऊंगा। जैसे ही उन्होंने पानी में पैर डालें अन्दर से यक्ष की आवाज आई-ठहरो, पहले तुम मेरे प्रश्न का उत्तर दो, तब ही तुम इस पानी को काम में ले सकते हो।

तब भीम ने कहा, कहो तुम्हें क्या पूछना है ? यक्ष कहता है, बाहर जो घोड़ा है, उसे थोड़ी दूर घुमाकर ले आओ, तब तुम पानी को हाथ लगाना। तब वह जाता है। थोड़ी दूर जाने पर वहाँ उन्होंने एक घोड़ा देखा जो दोनों तरफ से घास चर रहा है। आगे से भी और पीछे से भी। यह देख भीम विस्मित हो जाते हैं और वापस आ जाते है। वे जैसे ही पानी लेना चाहते हैं, वह यक्ष उन्हें सावधान करता है और कहता है कि तुम पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दो। तुम घोड़ा लेकर गये तुमने वहां क्या देखा ? उसने कहा कि वहां एक घोड़ा दोनों तरफ से घास चर रहा था।

तब यक्ष कहता है—"बताओं इसका क्या अर्थ हैं। तब वे कहते हैं कि मुझे तो इसका अर्थ मालूम नहीं हैं। तब यक्ष ने कहा—तुम्हें अर्थ मालूम नहीं तो तुम पानी नहीं ले सकते हो। लेकिन भीम ज्यादती करके पानी की तरफ आगे बढ़ता है [illegible]र ऐसा करते ही तुरन्त बेहोश होकर गिर जाता है। उधर उनके बहुत देर तक न [illegible]चने के कारण, अर्जुन जाते हैं और वे भी जैसे ही पानी के लिए उद्यत होते है—

फिर वही यक्ष कहता है, अभी तुम पानी नहीं ले सकते, पहले तुम मेरे प्रश्न का जवाव दो। यह वाहर जो घोड़ा है उसे लेकर जाओ और घुमाकर ले आओ।

अर्जुन जाते हैं, घोड़े पर बैठकर। वहां क्या देखते हैं कि दस घड़े पड़े हैं, एक घड़े में स पानी निकल रहा है, उससे दस घड़े भर रहे हैं और एक घड़ा खाली है, लेकिन दस घड़ों का पानी उसमें जा रहा है फिर भी वह भर नहीं रहा है उन्हें यह देख वहुत आश्चर्य हुआ। वे आते हैं और सरोवर पर पानी के निकट पहुंचे तो यक्ष फिर उसी तरह से कहता है कि रुको। अभी पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दो।

तब अर्जुन ने कहा "पूछिए क्या पूछना है ?" यक्ष ने कहा कि तुम घूमने गये वहां क्या देखा ? अर्जुन ने सारी बात बता दी।

तो यक्ष ने कहा—तुम इसका अर्थ बताओं इसके बाद ही तुम पानी पी सकते हो ?

तव अर्जुन ने कहा—अर्थ मुझे नहीं आता है। लेकिन पानी पीने से रोकने वाले तुम कौन होते हो ? मैं तो पानी पीऊंगा। ज़ैसे ही वे आगे बढ़ते हैं, बेहोश होकर गिर जाते है। जव वे वहुत देर तक नहीं लौटते हैं तो नकुल आते हैं और वे अपने भाईयों पर पानी छिड़कना चाहते है। जैसे ही वे सरोवर के निकट पहुँचते हैं, यक्ष उन्हें सावधान करता है—ठहरो, अभी तुम इस पानी को नहीं ले सकते। पहले तुर मेरे प्रश्न का जवाब दो। तब वे पूछते हैं कि तुम्हें क्या पूछना है ? यक्ष ने कहा कि तुम इस घोड़े को ले जाओ और फिर आकर प्रश्न का उत्तर दो। वे जाते हैं तो देखते हैं थोड़ी दूर पर जाकर कि वछिया का दूध गाय पी रही है। उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। वे वापस आये तव यक्ष ने पूछा—तुमने क्या देखा ? "तो उन्होंने बता दिया कि—"वछिया का दूध गाय पी रही है। यक्ष ने इसका अर्थ पूछा तो उन्होंने कहा अर्थ मुझे नहीं आता है। लेकिन फिर भी जब वे पानी लेने के लिए आगे बढ़ते हैं, तो उनकी हालत भी अपने दोनों भाईयों की तरह ही होती है।

फिर सहदेव आते हैं। यक्ष उनको भी यह कहता है कि घोड़ा लेकर जाओ और आकर मेरे प्रश्न का उत्तर दो। वे जाते हैं। वहां क्या देखते हैं कि राजहंस शुद्ध व पवित्र वस्तुओं—मोती को न खाकर के गन्दगी में मुंह डाल रहे हैं। वे आकर यक्ष को वता देते हैं। यक्ष उनसे प्रश्न करता है कि इनका क्या अर्थ है ? तब वे कहते हैं—मैं यह तो नहीं जानता।" तव यक्ष उन्हें पानी के लिए मना कर देता है। लेकिन जव वे जवरदस्ती लेना चाहते हैं तो उनकी भी वही हालत होती है।

फिर युधिष्ठिर आते हैं और सरोवर की तरफ वढ़ते हैं तो उन्हें भी यक्ष सचेत करता है—ठहरो, अभी तुम इस पानी को नहीं ले सकते। पहले तुम यह घोड़ा लेकर जाओ और घूमकर आओ, फिर मेरे प्रश्न का उत्तर दो। युधिष्ठिर जाते हैं, और क्या देखते हैं कि दो सुन्दर पक्षी है, उन दोनों की चौंच में माला है, लेकिन वे आपस में लड़ा रहे हैं। वे आते हैं तव यक्ष उनसे पूछता है कि तुमने क्या देखा ? युधिष्ठिर वता देते

है। तब यक्ष कहता है कि इसका क्या अर्थ है ? बताओ और तुम्हारे चारों भाईयों के प्रश्नों का उत्तर दे दो फिर तुम पानी ले सकते हो। युधिष्ठिर ने एक एक प्रश्न का उत्तर देना शुरु किया—घोड़ा आगे से भी खा रहा है और पीछे से भी। यह आने वाले समय की सूचना दे रहा है कि आने वाले समय में कर्मचारी ऊपर से और नीचे से दोनों तरफ से खाएंगे। अर्थात् उनका कोई चरित्र नहीं होगा। वे पूर्ण रूप से भ्रष्ट हो जाएंगे। ऊपर से वेतन लेंगे और नीचे से रिश्वत। इस प्रकार दोनों मुंह से खाएंगें।

एक घड़े से दस घड़े भर रहे हैं, मगर दस घड़े से एक घड़ा भी नहीं भर रहा हैं।

युधिष्ठिर कहते हैं कि दूसरे प्रश्न का यह उत्तर है कि आने वाले समय मेंएक पिता तो दस सन्तान का पालन करेगा, मगर दस पुत्र मिलकर एक पिता के दायित्व को नहीं निभा सकेंगे। वैसा ही आज हो रहा है।

बछिया का दूध गाय पी रही है।

युधिष्ठिर ने कहा कि इसका अर्थ यह है कि आने वाले समय में माता-पिता सन्तान को बेचकर अपना घर भरेंगे। यानि पहले जो स्वेच्छा से दहेज दिया जाता था, अब वह भिक्षावृत्ति में परिवर्तित हो जाएगा। जिसका वास्तविक स्वरूप आप देख रहे हैं। आज दहेज के लिए माँ-बाप अपनी सन्तान की किस तरह से कीमत लगाते हैं और दहेज वसूल करते हैं ? यदि वह उचित रूप में नहीं मिलता है तो लड़की को तरह-तरह की यातनाएं दी जाती है, उसे आत्म-हत्या के लिए मजबूर कर दिया जाता है। कभी-कभी तो ऐसा प्रसंग भी आता है कि तोरण पर आई हुई बरात भी उचित माँग पूर्ति नहीं होने के कारण पुनः लौट कर चली जाती है। या फिर नवविवाहिता पर तेल छिड़ककर उसे जिन्दा जलाया जाता है।

बड़ी गम्भीरता स सोचने का विषय है कि हम जैन कहलाते हैं और जैन धर्म का प्रमुख सिद्धान्त अहिंसा हैं। लेकिन फिर भी हम पंचेन्द्रियों की हत्या में तनिक भी भय नहीं खाते। इतना ही नहीं, हम महावीर की सन्तान कहलाते हैं और दूसरी तरफ धन के लिए भिक्षावृत्ति अपनाते है और पंचेन्द्रिय की हिंसा करने में जरा भी संकोच नहीं करते।

मैं पूछता हूँ कि इन हत्याओं का पाप किसको लग रहा है ? यह पाप किसी व्यक्ति विशेष को ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण समाज को लग रहा है। यदि आप संकल्प करें कि हम न तो दहेज लेंगे और न ही देंगे, तब तो आप उस पाप से छूट सकते हैं, वर्ना आपको भी वह पाप तो लगेगा ही।

राजहंस मोती को छोड़कर गन्दगी में मुंह डाल रहा है।

तब युधिष्ठिर ने यक्ष से कहा कि यह भी आने वाले समय का संकेत दे रहा है ने वाले समय में जो ऊंचे कुल—वर्ग के लोग हैं, वे पतित होंगे और जो

छोटे कहलाए जाते हैं वे धर्म के प्रति श्रद्धा रखेंगे और पाप से भय खाएंगे। और इसका आज हम प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं। उच्च घरों के खान-पान बिगड़ते जा रहे हैं। अण्डा खाना और शराब पीना तो फैशन का पर्याय बन गया है। सम्पन्नता बढ़ी कि विलासिता बढ़ी और उसके साथ ही दुर्व्यसनों का बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है।

बम्बई की बात है। एक मुनि है—सुभाष मुनि। उन्होंने बताया कि एक सन्त भिक्षा के लिए जाते हैं और सबके यहां पहले फ्रिज खुलवाकर देखते हैं। वहां करीब 70 में से 65 घरों में उन्होंने देखा कि उनकी फ्रिज में मांसाहारी वस्तुएं थी। उन्होंने वहां से आहार नहीं लिया। बताएं, यदि 100 में से 90 प्रतिशत व्यक्तियों का आचरण इस प्रकार का हो तो दोष किसे दिया जाय ? यह तो अच्छे-अच्छे घरों की हालत है, जो प्रतिष्ठित घराने कहलाते हैं।

इस प्रकार उच्च घर वाले नीचा कार्य कर रहे हैं और नीचा कहलाने वाले अच्छा कर रहे हैं। मालवा क्षेत्र में आचार्य भगवन् ने नीची जाति के हजारों लोगों को व्यसन-मुक्त किया है, जिन्हें धर्मपाल कहा जाता है।

दो सुन्दर पक्षी हैं, उनके मुंह में दो मालाएं हैं, लेकिन वे आपस में झगड़ रहे हैं।

युधिष्ठिर ने इसका अर्थ यह बताया कि आने वाले समय में धर्माचार्य तो होंगें, लेकिन वे आपस में लड़ेंगे। वही हालत आज हो रही है। धर्म के नाम पर आज किस तरह हिंसा हो रही है? आदमी आदमी के खून का प्यासा हो रहा है।

इस प्रकार युधिष्ठिर ने यक्ष के सामने पंचम काल का चित्र प्रस्तुत किया। इससे वह बहुत खुश हुआ। उसने कहा कि तुम पानी पी सकते हो और अपने भाइयों को भी ले जा सकते हो।

हमें यह पर्व, यह संदेश देता है कि हम अशुद्ध विचारों के द्वारा संसार के इस प्रवाह में बहते न चले जाएं, उन अशुद्ध विचारों को शुद्ध प्रवाह में परिवर्तित करदें।

भगवान महावीर ने आचारांग सूत्र में कहा है—

"अनुस्त्रोतगामी न बनो, प्रतिस्त्रोतगामी बनो"

अर्थात् जो बहाव है, उसकी विपरीत दिशा पकड़ो, बहाव के साथ बहने में विशेषता नहीं है। वह तो एक तिनका भी कर लेता है। बहाव में वह भी बह जाता है। जीवन की विशेषता इस बात में है, जब हम प्रतिस्त्रोतगामी बनें। दुनियां की चाल को देखकर हमें नहीं चलना है, हमें तो अपने जीवन की सही दिशा को पकड़ना है।

इसके लिए ही ये पर्युषण पर्व आते हैं। इन पर्वों के दिनों में अपनी आत्मा में झांककर देखना होगा कि हमारे भीतर क्रोध का दावानल तो नहीं जल रहा है ? अहंकार के शाले तो नहीं उठ रहे हैं ? यदि हम शान्ति चाहते हैं तो हमें इन अंतरंग

शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनी होगी ? और काषायिक वृत्तियों की आग को ठंडी करनी होगी।

हम यह भी जानते हैं कि आग से आग ठंडी नहीं होती। जैसे गर्म लोहे को काटने के लिए ठंडा लोहा चाहिए, उसी प्रकार इन कषाय भावों को नष्ट करने के लिए उपशान्त भावना की आवश्यकता होती है। सामने वाले के क्रोध को जीतने के लिए क्षमा की आवश्यकता होती है।

राजगृह नगरी में अर्जुन माली का अपना बगीचा था। उसी की उपज से वह अपना निर्वाह करता था। वह और उसकी पत्नी दोनों ही बगीचे में रोजाना फूल चुनने के लिए जाते थे। प्रतिदिन का उनका यह क्रम था। उसकी पत्नी का नाम बन्धुमति था। उसी राजगृह नगर में छः व्यक्तियों की एक ललित गोष्ठी थी। वे छहों व्यक्ति स्वच्छन्द व अति उदण्ड थे, उन्हें राजा की ओर से भी चाहे जो करने की छूट मिली हुई थी। नीतिकार कहते हैं—

यौवनं धन सम्पत्ति प्रभुत्वं अविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्ठयं॥

अर्थात् जहां यौवन, सम्पत्ति सत्ता व अविवेक ये चारों ही मिल जायें तो फिर क्या कहना ? ये चारों ही उस गोष्ठी—मित्र मण्डली को उपलब्ध थे। राजा ने उन्हें स्वतन्त्रता दे रखी थी।

वे एक बार अर्जुन मालाकार के उस बगीचे में आये और उनकी दृष्टि उसकी पत्नी बन्धुमति पर पड़ी तो उनके मन में विकारों की आंधी चलने लगी। उन्होंने यह निश्चय किया कि हमें किसी तरह इसे प्राप्त करना ही है और फिर एक योजना बनाई कि जब अर्जुन माली यक्ष की पूजा करेगा, तब इसे बांध लेंगे और उन्होंने वैसा ही किया। ज्योंही अर्जुन माली यक्ष को नमस्कार करने लगा, उन्होंने उसे बांध लिया और वे वहीं उसकी पत्नी के साथ व्यभिचार करने लगे। अर्जुन माली का हृदय इस कुकृत्य को देखकर तड़फ उठा। उसकी आत्मा चित्कार करने लगी। उसने कहा—देखो, मैं इतने समय से यक्ष की पूजा कर रहा हूँ और फिर भी इसके सामने यह कुकृत्य हो रहा है और मुझे यह सब देखना पड़ रहा है। उसने कहा कि इस मूर्ति में कोई शक्ति नहीं है।

वास्तव में मूर्ति में कोई भगवान नहीं होते हैं, लेकिन यह जरूर है कि जिस समय अर्जुन माली यह कह रहा था, उस समय यक्ष वहां घूम रहा था। यह नीचे स्तर के देवता हैं जो इधर-उधर घूमते रहते हैं। अतः वह अर्जुन के शरीर में प्रतिबद्ध हो गया। उसके पहुंचते ही शक्ति का आवेग उसके शरीर में फूट पड़ा।

उसने वह मुद्गल उठा लिया और सबसे पहले उन छः व्यक्तियों को मौत के .।८ उतार दिया।

बन्धुमति के विषय में भी सोचा कि यह भी दुराचारिणी है, अगर इसके ऊपर उपसर्ग आया तो इसने उसी समय अपनी जीभ क्यों न खींच ली? उसने दुराचार का सेवन क्यों किया? और उसने बन्धुमति को भी मार दिया।

इतना करने के बाद भी उसका आवेश ठंडा नहीं हुआ। उसने सोचा कि राजा व प्रजा सभी इस दण्ड के भागीदार हैं, क्योंकि वे सभी इन अत्याचारियों के कुकृत्यों को बढ़ावा दे रहे हैं और इस तरह वह प्रतिदिन छः पुरुष व एक महिला की हत्या करने लगा। पूरे राजगृह नगर में हाहाकार मच रहा था। राजा ने भी यह घोषणा करवादी कि यदि कोई बाहर जाएगा तो उसकी रक्षा का दायित्व शासन का नहीं होगा।

इधर अर्जुन का नर संहार कृत्य चल रहा था। उसे जहां कहीं कोई व्यक्ति मिलता, वह उसे धराशायी कर देता। इस प्रकार उसने करीब 1141 व्यक्तियों की हत्या करदी।

प्रभु महावीर का आगमन :

इधर राजगृह नगर के बाहर उद्यान में भगवान महावीर का आगमन हुआ। यद्यपि सभी लोग प्रभु दर्शन के लिए आतुर थे, मगर अर्जुन माली के कारण कोई नहीं जा रहा था। भगवान ने वहां पहले 14 वर्षावास भी किये थे और लाखों उनके अनुयायी थे, मगर उनमें आत्मबल नहीं था कि बिना मृत्यु की परवाह किये दर्शन करने चले जाएं।

किन्तु एक युवक था—सुदर्शन। उसने जब प्रभु के आगमन का समाचार सुना तो उसके हृदय में भक्ति का सागर उमड़ने लगा और उसका मन प्रभु दर्शन के लिए मचलने लगा। उसने अपने माता-पिता से विनती की कि—"मैं प्रभु दर्शन के लिए जाना चाहता हूं, आप लोग मुझे आज्ञा दें।"

देखिए उसमें कितना आत्मबल था? उसमें कितनी श्रद्धा उमड़ रही थी कि उसने अपनी जान की परवाह न की। माता-पिता ने समझाया कि प्रभु सर्वज्ञ हैं सो यहीं से नमस्कार करलो। अपनी नगरी के बाहर जाने का निषेध है, क्योंकि वहां उपद्रव है।

तब सुदर्शन कहते हैं, प्रभु तो सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, किन्तु मैं तो नहीं हूं, मुझे तो प्रभु दिखाई नहीं दे रहे हैं। उन्होंने कहा कि मृत्यु का क्या भरोसा, वह तो इसी क्षण भी आ सकती है। मृत्यु के भय से मैं भगवान के दर्शनार्थ नहीं जाऊं यह मेरी आत्मा को स्वीकार नहीं है। अगर मुझे मृत्यु आ भी जाय तो सद्गति ही प्राप्त होगी।

जरा विचारिए कि आज हमारी क्या स्थिति हो रही है? कहां वह सुदर्शन श्रावक, जिसने जीवन की परवाह नहीं की, प्रभु दर्शन के लिए, और कहां आज के श्रावक? अगर साधु घर के सामने भी ठहरे हुए हों तो उन्हें दर्शन करने की फुर्सत

नहीं मिलती। यह तो बहुत दूर है, अगर साधु श्रावक को रास्ते में मिल जाते हैं तो उन्हें वन्दना करने में भी वे अपनी अप्रतिष्ठा समझते हैं।

सुदर्शन का दर्शनार्थ प्रस्थान :—

जब वे दर्शनार्थ जाने लगे तो नगर के दरवाजे बन्द थे। किसी को बाहर जाने की आज्ञा नहीं थी। मगर उनके तो रग-रग में धर्म रमा हुआ था। वे इस आज्ञा को स्वीकार कैसे करते? उन्होंने राजा से आज्ञा लेकर दरवाजा खोला और बढ़ गऐ अपने लक्ष्य की ओर। क्योंकि उनका हृदय प्रभु दर्शन के लिए अति उत्सुक हो रहा था। इधर नगर के अनेक व्यक्ति उत्सुक होकर देख रहे थे। उनमें कोई आलोचना कर रहा था तो कोई उनकी प्रशंसा कर रहा था।

जैसे ही सुदर्शन बढ़ रहा था, उधर अर्जुन वह मुद्गल उठाये चला आ रहा था। सुदर्शन ने ज्योंही अर्जुन को देखा, उन्होंने उपसर्ग का अनुमान लगाकर सागारी संथारा लेकर ध्यान लगा लिया और प्रभु को परोक्ष वन्दन करके अपने अतिचारों की आलोचना करके समाधि भाव में लीन हो गये।

विचार कीजिए, सुदर्शन के स्थान पर आज का कोई श्रावक होता तो वह भगवान पर ही दोषारोपण करता कि क्या आपमें इतनी शक्ति नहीं है कि मेरे पर आने वाले इस उपसर्ग को दूर कर दें। लेकिन सुदर्शन इतनी उथली श्रद्धा वाला नहीं था। यह तथ्य पूर्णतया तर्क सगत है कि यदि भगवान पर सच्ची श्रद्धा हो तो प्रभु विना बुलाए ही व्यक्ति की सेवामें उपस्थित हो जाते हैं। किन्तु ऐसे विकल क्षणों में हमारा आत्मबल स्थित नहीं रह पाता है और हम इधर-उधर शरण ढूंढते रहते हैं।

उधर अर्जुन दहाड़ मारता हुआ उसके निकट पहुंचा। सुदर्शन पर वार करने के लिए मुद्गल उठाया। वहां नगर कोट पर खड़े लोग यह दृश्य देख रहे थे।

सुदर्शन का आत्मबल—सत्य साधना का प्रभाव :—

लेकिन अर्जुन ने जैसे ही वह मुद्गल उठाया तो वह उठा ही रह गया। अर्जुन के बहुत प्रयास करने के बाद भी वह नीचे नहीं गिरा। क्योंकि सुदर्शन के अमृत रस ने अर्जुन के विष को परास्त कर दिया था।

प्रेम करुणा, समता, अहिंसा में शक्ति का समुद्र लहराता है, जो क्रूर से क्रूर प्राणी को बदल देती है।

सुदर्शन का अर्जुन के प्रति व्यवहार :—

जब सुदर्शन ने देखा कि मुद्गल नीचे नहीं गिर रहा है, तो उन्होंने एक दृष्टि अर्जुन पर डाली। उसे इस तरह देखते ही यक्ष वहां से चला गया। अर्जुन धड़ाम से गिर गया और वेहोश हो गया।

सुदर्शन ने देखा कि उपसर्ग टल गया है तो, उन्होंने अपना ध्यान खोला और अर्जुन को अपनी गोद में लेकर उसे होश दिलाया।

देखिये, उस व्यक्ति की दया/अनुकम्पा को जिसने ऐसे व्यक्ति की रक्षा हेतु उसे गोद में सुलाया, जो सैंकड़ों व्यक्तियों को मौत के घाट उतार चुका था व स्वयं उसकी जान का दुश्मन बना हुआ था। आज तो यदि एक कुत्ता भी काट दे तो, व्यक्ति उसे मार देने में तनिक भी समय नहीं लगाता।

इधर जब अर्जुन को होश आया तो उसे अपने आपको इस तरह देखकर आश्चर्य हुआ और तब उसने सुदर्शन से पूछा"—भन्ते, आप कौन हैं ? कहां जा रहे हैं ?

बताइये उसने क्या परिचय दिया ?

उसने यह नहीं कहा कि मै अमुक सेठ का बेटा हूँ। अपितु उन्होंने अपना परिचय एक श्रमणोपासक के रूप में दिया और कहा कि मैं भगवान महावीर के दर्शनार्थ जा रहा हूँ।

अर्जुन ने तब सहज ही यह प्रश्न किया कि—"क्या आपके साथ चल सकता हूं ? क्या मुझ जैसे पापी का भी उद्धार आपके भगवान कर देंगे ?

तब बड़े ही विवेक से सुदर्शन ने उत्तर दिया—"निःसन्देह आप प्रभु के दर्शन के लिए चल सकते हैं तथा मुझे यह भी पूर्ण विश्वास है कि वह आपका उद्धार अवश्य करेंगे।

दोनों भक्त उठे और प्रभु के दर्शनार्थ चलने लगे। इधर लोगों ने जब यह सुना कि सुदर्शन के आत्मबल के सामने यक्ष ठहर नहीं सका और अब अर्जुन सुदर्शन के साथ भगवान महावीर के दर्शनार्थ गया है। सुदर्शन की जय-जय कार होने लगी और जन—समुदाय प्रभु के दर्शनार्थ उमड़ पड़ा।

अर्जुन में आत्म जागृति व दीक्षा अंगीकार :—

सुदर्शन के साथ अर्जुन दर्शनार्थ पहुंचे और भगवान को वन्दन किया। प्रभु के एक ही उपदेश ने उसकी आत्मा को जागृत कर दिया और वह आत्म कल्याण के लिए अग्रसर हो गया।

दीक्षा लेते ही अर्जुन अणगार ने बैले बैले पारणा करने का अभिग्रह लिया। कल तक जिसने हजारों व्यक्तियों को भयाक्रान्त कर रखा था, आज वह सौम्य मुनि-वेश धारण किये चल पड़ा था। उसको स्वयं को भी अपने पाप के प्रति पश्चाताप था। इस प्रकार जीवन में गहरा परिवर्तन हुआ और उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति को कर्म क्षय की प्रक्रिया में लगा दी।

सुदर्शन की भांति हम में भी आत्म-बल का जागरण हो, यह संदेश देने के लिए ये पर्युषण पर्व आते हैं। इन व्याख्यानों पर चिन्तन मनन करें और अपने सोये हुए चैतन्य देव को जागृत करें।

27 अगस्त, 1987

———

"यह कलयुग है। काल-चक्र का पहिया तेजी से घूम रहा है और सम्पूर्ण विनाश सामने दिखाई दे रहा है। जो क्षण बीत रहा है, वह किसी भी कीमत पर लौटाया नहीं जा सकता। जितनी देर है, उतना ही अंधेर है। कल को संवारने के लिए आत्म-चिन्तन जरूरी है। आत्म-गवेषणा के लिये संवत्सरी से अधिक महान् पर्व और कोई नहीं हो सकता। इस पर्व का संदेश हृदयंगम कर के ही हम अपने कल्याण का मार्ग, विनाश से बचने का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।"

काल-चक्र का पहिया घूम रहा है

भारत में अनेक पर्व मनाए जाते हैं—लौकिक पर्व-लोकोत्तरपर्व। जितने भी पर्व मनाए जाते हैं उनके पीछे कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता हैं। उदाहरण के लिए रक्षाबन्धन के दिन भाई को बहिन अपने कर्तव्य का अहसास कराती है। दीपावली अन्तर्वाह्य स्वच्छता का प्रतीक माना गया हैं। इस पर्व पर व्यापारी अपने सम्पूर्ण आय-व्यय का लेखा-जोखा करते हैं।

ठीक उसी प्रकार आध्यात्मिक स्वच्छता, अन्तर्शुद्धि, आय-व्यय, चिन्तन-मनन के लिए संवत्सरी महापर्व मनाया जाता है। यह एक लोकोत्तर पर्व है। जिस तरह से वर्ष भर में एकत्र कचरे को दीपमालिका पर निकाला जाता है, उसी प्रकार आत्मा में राग-द्वेष, विषय-कषाय, वासना का जो कचरा एकत्र हो जाता है, उसे इन पर्वों के आठ दिनों में बाहर निकाला जाता है।

यह लोकोत्तर पर्व है। यह औपचारिकता का पर्व नहीं है। जो व्यक्ति गहराई में नहीं पहुंचते, आत्म शुद्धि नहीं करते और एक औपचारिकता निभाने के लिए शर्म से धर्म स्थान में आते हैं, उनकी साधना मात्र ढोंग कही जा सकती हैं।

इस पर्युषण पर्व के सात दिन तैयारी के होते हैं और आठवां दिन साधना का होता है। इसमें हम यह चिन्तन-मनन करें कि हमारे भीतर कितने दुर्गुणों ने प्रवेश किया है, तथा हमारा किन-किन के साथ संघर्ष हुआ हैं? हम राग-द्वेष की भावना में कितने बन्धे हैं?

इस दिन का हमारा मूल चिन्तन यह होता है कि अपने अंतरंग में कितनी बार पहुंचा हूं? कितने समय तक मैं अपने अंतरंग को देखने में व्यस्त रहा हूं? कितना समय मैंने निन्दा-विकथा में लगाया है? मैं साधना मार्ग पर कितना अग्रसर रहा हूं? मैंने परम शान्ति को पाने के लिए क्या प्रयास किये हैं?

लेकिन यह चिन्तन भी कोई सहज नहीं है। इसके लिए भी बहुत कठिन साधना की आवश्यकता होती है। क्योंकि हम वर्ष भर तो धर्म साधना को ताक में रख देते हैं और इन आठ दिनों में वर्ष भर का पाप-मैल धोना चाहते हैं, बताओ यह कैसे सम्भव हो सकता है? यह तो स्थिति ऐसी हुई कि परीक्षा का दिन आज है और अब तक हमने पुस्तक उठाकर देखी नहीं फिर भी परीक्षा देने जाते हैं और परीक्षा में उत्तीर्ण होने की कामना करते हैं।

ठीक यही स्थिति आज के अधिकांश व्यक्तियों की है । नीतिकारों ने तीन प्रकार के श्रोताओं का उल्लेख किया है—

1. सदैया :—

जो हमेशा ही धर्मोपासना करते हैं, आत्म-चिन्तन करते हैं और प्रवचन श्रवण का लाभ लेते हैं ।

2. कदैया :—

जो कभी-कभी प्रसंग आया या कोई रिश्तेदार दर्शनार्थ आये. तव उनके साथ आये, वो कदैया ।

3. पवैया :—

जिनमें केवल श्रद्धा का अंकुरण है, लेकिन वह विभिन्न परतों के नीचे दवा हुआ है। जैसे ही पानी आता है तो वे परतें आपस में हिलने लगती है । तव वह अकुंरण अपना अस्तित्व दिखाता है । वही स्थिति हैं कि 365 दिन में आज के दिन जो व्यक्ति आते हैं, उनमें भावना तो है लेकिन उचित वातावरण न मिलने के कारण उनकी भावना सार्थक नहीं वन रही है ।

आज जो जन-समुदाय दिखाई दे रहा है, उसमें से करीव 40 प्रतिशत सदैया 20 प्रतिशत कदैया और 40 प्रतिशत पवैया होंगे ।

मैं देखता हूं कई बार कई व्यक्ति आते हैं, उनके मन में अनेक जिज्ञासाएं होती हैं तथा अहिंसा, धर्म सिद्धान्त के बारे में अनेक भ्रान्तियां होती हैं । मैं इस वात की आवश्यकता महसूस करता हूं कि उनके सामने इन भ्रान्तियों का समाधान होना चाहिए, ताकि सत्य श्रद्धा के लिए पवित्र फूल प्राप्त कर सकें । जिस तरह दीप । मालिका के अवसर पर घर दूकान आदि सभी जगहों की सफाई की जाती है, उसके आय व्यय का हिसाव लगाया जाता है, उसी तरह ज्ञानीजन कहते हैं कि आपकी आत्मा में भी 365 दिन में वहुत मैल इकट्ठा हो जाता है। अतः आप उसकी भी सफाई करें, चिन्तन मनन करें—कहां तनाव है, टेंशन है ? भीतर के हिसाव-किताव के लिए हा ये पर्व-प्रसंग आते हैं ।

आप कभी-कभी अपने वहीखातों में हिसाव का मिलान करते हैं और अगर उनमें 5(0 रुपये की गड़वड़ दिखाई देती है और इनकम टैक्स आफिसर आने वाले हो तो आप विचलित हो जाते हैं और सारा समय और मन उसमें लगा देते है । लेकिन, विचार करिये कि क्या कभी आपने आत्मा का हिसाव-किताव किया है ? देखा है कि आप अपना सारा समय किन-किन कार्यों में लगा रहे हैं ? इसलिए ज्ञानी-जन कहते हैं कि हमें अपनी साधना में तन्मयता रखनी चाहिए, और समय-समय पर हिसाव करना चाहिए कि हमारा समय किधर जा रहा है ? हम जीवन में क्या रहे हैं ?

यह बहुत ही गहनतम विषय है। यदि हमने अपना अन्तरावलोकन नहीं किया और इस समय को यों ही व्यर्थ खो दिया तो फिर पश्चाताप के अलावा कोई चारा नहीं रहेगा। क्योंकि समय अत्यन्त मूल्यवान है। गया हुआ एक क्षण हजारों मुद्राओं के व्यय करने पर भी पुनः नहीं आता है। इसलिए ही तीर्थंकरों ने पर्वों का उल्लेख किया है, ताकि इन पर्वों के माध्यम से व्यक्ति साधना/धर्म-ध्यान आदि में अपने आपको तल्लीन कर सके।

लेकिन, कई बार यह प्रश्न उभर कर सामने आता है कि यह पर्व इसी समय भादवा सुदी पंचमी को ही क्यों मनाया जाता है? इसका उद्देश्य तो आत्मा-शुद्धि करना है तो कभी भी की जा सकती है। इस संशय का एक तर्क-पूर्ण समाधान तो यह है कि हमें धर्म ध्यान, आत्म-शुद्धि के लिए कोई न कोई दिन तो निश्चित करना ही होगा। जो दिन निश्चित करेंगे उसके लिए भी यह प्रश्न हो सकता है कि यही दिन क्यों? इस प्रकार हम चाहें किसी भी तिथि को क्यों न मनायें, हमेशा ही यह प्रश्न तो उठेगा ही कि यह इस तिथि को ही क्यों?

इसके अलावा ज्ञानियों ने जो व्यवहारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है, वह यह है कि अधिकांश क्षेत्रों में इन दिनों किसान की फसलें खड़ी रहती है, अतः उनको कोई विशेष कार्य नहीं होता है। फसल अपूर्णता के कारण व्यापारियों को भी समय मिलता है, तथा वर्षा ऋतु की प्रबलता के कारण जीवों की अधिक उत्पत्ति होती है, अतः हिंसा से बचने के लिए इसी समय ये पर्व मनाए जाते हैं।

लेकिन, आगमिक दृष्टि से-तीर्थंकरों की दृष्टि में जो महत्त्वपूर्ण कारण है, वह यह है कि युग परिवर्तन होता है तो प्रलय होता है। जैन ग्रन्थों में इन युगों के परिवर्तन को आरा परिवर्तन कहा है। जिस तरह से बैलगाड़ी के पहियों में धुरी से जुड़ी हुई लकड़ियाँ लगी रहती है, जिन्हें "आरा" कहते हैं। उसी प्रकार कालखण्ड में दूरियाँ होती हैं। एक काल चक्र में 12 आरे और 2 खण्ड होते हैं। उत्सर्पिणी काल अवसर्पिणी काल इनको मिलाकर ही एक कालचक्र बनता है। आगमिक दृष्टि से सभी आरे आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा को ही बदलते है। प्रथम आरे से द्वितीय आरा इस पूर्णिमा को बदलता है। अभी पांचवा आरा चल रहा है। यह 21 हजार वर्ष का है। अभी इसके लगभग 2500 वर्ष व्यतीत हुए है। लगभग साढ़े अट्ठारह हजार वर्ष अभी बाकी है। इसके बाद में छठा आरा लगेगा।

पांचवें आरे की समाप्ति के बाद छठे आरे में प्रलयंकारी तूफान उठेंगे। उस समय धूल-अग्नि-पानी की सात-सात दिन तक वर्षा होगी। चारों तरफ त्राहि-त्राहि हो जायेगी। विरले व्यक्ति ही इस समय बचेंगे। छठा आरा लगते-लगते सब कुछ समाप्त हो जाएगा। इस प्रकार यह काल ह्रास का काल होगा। सम्पूर्ण व्यवस्था समाप्त हो जाएगी।

वैज्ञानिकों ने भी इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है, क्योंकि इस समय ऐसे घातक अणु बमों का आविष्कार हो चुका है कि केवल कुछ ही मिनटों में यह सम्पूर्ण पृथ्वी नष्ट-भ्रष्ट हो सकती है।

जैन आगमों में तो अभी साढ़े अट्ठारह हजार वर्ष के बाद प्रलय की बात की गई है, जबकि वैज्ञानिकों ने ज्यादा से ज्यादा मात्र 50 वर्षों के लिए ही कहा है।

डॉ. एलबर्ट आईंस्टीन 19वीं सदी के महान् वैज्ञानिक हुए है। उन्हें पूछा गया कि तीसरा विश्व युद्ध किस तरह लड़ा जाएगा ?

अभी तक दो विश्व युद्ध हो चुके हैं। प्रथम विश्वयुद्ध में करीब साढे तीन करोड़ व्यक्तियों का नरसंहार हुआ था और द्वितीय विश्व युद्ध में करीब साढ़े सात करोड़ का नरसंहार हुआ। यद्यपि उस समय तक विज्ञान ने कोई विशेष प्रगति नहीं की थी, लेकिन आज विज्ञान इस तरह की तैयारी कर रहा है कि आज पृथ्वी को एक बार नहीं सौ बार नष्ट किया जा सकता है। जरा कल्पना करिए यदि अणु स्टोरेज के गेट कीपर का दिमाग पागल हो जाए और वह एक काड़ी लगाकर फैंक दे तो क्या हो दुनिया का ? इसी दृष्टि से एलबर्ट आईंस्टीन ने बड़े ही सहज भाव से उत्तर दिया—"तीसरे युद्ध के लिए तो मैं कुछ नहीं कह सकता, मगर यदि चौथा युद्ध होगा तो मिट्टी के ढ़ेलों और पत्थरों से लड़ा जाएगा।"

देखिये, उस वैज्ञानिक को भी पूर्वाभास था कि तृतीय विश्वयुद्ध समस्त मानव अस्तित्व को समाप्त करने वाला होगा।

जब छठा आरा शुरु होगा, उस समय नदियों में पानी सूख जायेगा। भयंकर गर्मी व भयंकर ठण्ड पड़ेगी, लोग निकल नहीं सकेंगे। अधिकांश मनुष्य तो मर जाएगे एवं बचे हुए मानव भी एक हाथ लम्बाई के होंगे जो बिलों में रहेंगे। उस समय 6 वर्ष की बालिका मां बन जाएगी। दिखाई देने वाली अग्नि का विच्छेद हो जाएगा। उस समय के मनुष्य मच्छ-कच्छ का भोजन करेंगे। नदियों में पानी कम रहेगा। अतः वे वहां से मच्छ पकड़ लेंगे और मिट्टी में दबा देंगे और शाम को वे पक जाएंगे तब वे उन्हें खा लेंगे।

जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार जब वापस पहला आरा लगेगा, तब सात-सात दिन तक पांच प्रकार की बारिश होगी। पहले सात रोज तक मूसलाधार बारिश होगी। पृथ्वी जल मग्न हो जाएगी। फिर सात दिन तक दूध की वर्षा होगी, फिर सात दिन खाली रहेंगे। फिर सात दिन तक घी की वर्षा होगी, और फिर सात दिन खाली रहेंगे। फिर सात दिन तक अमृत व सात दिन तक रस की वर्षा होगी, इस तरह 50 वें दिन जाकर शान्ति स्थापना होगी। सब लोग गुफा में से निकलेगें और यह प्रतिज्ञा ँगे कि अब कच्छ-मच्छ नहीं खाऐंगे। यह पंचमी का दिन होता है, जब वे अहिंसक

होने की प्रतिज्ञा करते हैं। इस कारण ही जैन ग्रन्थों में इस दिन का अधिक महत्त्व माना गया है।

वह आज के दिन क्यों मनाया जाता है, इसका विश्लेषण तो हो गया, मगर अब प्रश्न यह उठता है कि यह कैसे मनाया जाय ? इस दिन हमारा मुख्य उद्देश्य क्या होना चाहिए ?

आत्म शोधन :—

आत्म-शोधन का अर्थ है—आत्मा पर लगे कर्म मैल को साफ करना, आत्मा की पूर्ण सफाई करना।

मनोग्रन्थियों का विश्लेषण :—

दूसरा कार्य करें वर्ष भर की वृत्तियों मानसिक उतार-चढ़ावों का विश्लेषण।

आत्म चिन्तन :—

आज हम पर-चिन्तन से सर्वथा मुक्त रहकर केवल आत्म चिन्तन के प्रति संलग्न रहें। हमारे आत्म-चिन्तन के द्वारा आध्यात्मिक वातावरण का सृजन होगा।

आप जानते है कि वायुमण्डल का हमारे ऊपर गहरा प्रभाव पड़ता है। हमारे सामने जिस तरह का वायुमण्डल होगा, हम उसीं रूप में ढल जाते हैं।

बच्चों में तपश्चर्या के प्रति भावना :—

यही कारण है कि आज के दिन छोटे-छोटे बच्चों में तपश्चर्या की पुनीत भावना उत्पन्न होती है। वे अपनी मम्मी से कहते है कि "मैं आज एकासन करूंगा या उपवास करूंगा", माँ उन्हें समझाती है—बेटा, अभी तुमसे नहीं होगा, तुम बड़े होकर करना ।" लेकिन उनमें एक अद्भुत उत्साह होता है। वे मना करने के बावजूद भी प्राय: कुछ न कुछ करते हैं। इसका कारण उन्हें अपनी मम्मी से मिले हुए संस्कार और वायुमण्डल का प्रभार ही हैं।

यह ध्यान में रखने की बात है कि यह पर्व केवल जैन धर्म वालों का ही नहीं है, यह तो प्राणी मात्र का पर्व है। इसमें प्राणीमात्र के कल्याण की भावना छिपी हुई है। इसमें सभी प्राणियों की रक्षा को बोध दिया गया है। किसी भी जीव को सताना पाप माना गया है। यह पर्व आत्म-दर्शन को गति देने वाला है। अत: इसकी उपासना में किसी के प्रति वेमनस्य भाव नहीं हो सकता है।

क्षमा वीरता की प्रतीक :—

इस पर्व के दिन यदि हम अन्त:करण से क्षमा याचना नहीं करते, यानि हमारे भीतर वही कलुष भरा है और हम क्षमायाचना मांगते है, तो वह वास्तविक क्षमा नहीं कहलायेगी। आजकल व्यक्ति जिससे लड़ाई होती है, उससे तो क्षमा नहीं मांगते और जिससे लड़ाई नहीं होती, उससे क्षमा मांगते है। जैसा कि कहा गया है—आप दूसरे गांव, नगर तो क्षमायाचना के कार्ड भेज देते है, लेकिन पड़ोस में, जिससे

वैज्ञानिकों ने भी इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है, क्योंकि इस समय ऐसे घातक अणु बमों का आविष्कार हो चुका है कि केवल कुछ ही मिनटों में यह सम्पूर्ण पृथ्वी नष्ट-भ्रष्ट हो सकती है ।

जैन आगमों में तो अभी साढ़े अट्ठारह हजार वर्ष के बाद प्रलय की बात की गई है, जबकि वैज्ञानिकों ने ज्यादा से ज्यादा मात्र 50 वर्षों के लिए ही कहा है ।

डॉ. एलबर्ट आईंस्टीन 19वीं सदी के महान् वैज्ञानिक हुए है । उन्हें पूछा गया कि तीसरा विश्व युद्ध किस तरह लड़ा जाएगा ?

अभी तक दो विश्व युद्ध हो चुके हैं । प्रथम विश्वयुद्ध में करीब साढे तीन करोड़ व्यक्तियों का नरसंहार हुआ था और द्वितीय विश्व युद्ध में करीब साढ़े सात करोड़ का नरसंहार हुआ । यद्यपि उस समय तक विज्ञान ने कोई विशेष प्रगति नहीं की थी, लेकिन आज विज्ञान इस तरह की तैयारी कर रहा है कि आज पृथ्वी को एक बार नहीं सौ बार नष्ट किया जा सकता है । जरा कल्पना करिए यदि अणु स्टोरेज के गेट कीपर का दिमाग पागल हो जाए और वह एक काड़ी लगाकर फेंक दे तो क्या हो दुनिया का ? इसी दृष्टि से एलबर्ट आईंस्टीन ने बड़े ही सहज भाव से उत्तर दिया—"तीसरे युद्ध के लिए तो मैं कुछ नहीं कह सकता, मगर यदि चौथा युद्ध होगा तो मिट्टी के ढ़ेलों और पत्थरों से लड़ा जाएगा ।"

देखिये, उस वैज्ञानिक को भी पूर्वाभास था कि तृतीय विश्वयुद्ध समस्त मानव अस्तित्व को समाप्त करने वाला होगा ।

जब छठा आरा शुरु होगा, उस समय नदियों में पानी सूख जायेगा । भयंकर गर्मी व भयंकर ठण्ड पड़ेगी, लोग निकल नहीं सकेंगे । अधिकांश मनुष्य तो मर जाएगे एवं बचे हुए मानव भी एक हाथ लम्बाई के होंगे जो बिलों में रहेंगे । उस समय 6 वर्ष की बालिका मां बन जाएगी । दिखाई देने वाली अग्नि का विच्छेद हो जाएगा । उस समय के मनुष्य मच्छ-कच्छ का भोजन करेंगे । नदियों में पानी कम रहेगा । अत: वे वहां से मच्छ पकड़ लेंगे और मिट्टी में दबा देंगे और शाम को वे पक जाएंगे तब वे उन्हें खा लेंगे ।

जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार जब वापस पहला आरा लगेगा, तब सात-सात दिन तक पांच प्रकार की बारिश होगी । पहले सात रोज तक मूसलाधार बारिश होगी । पृथ्वी जल मग्न हो जाएगी । फिर सात दिन तक दूध की वर्षा होगी, फिर सात दिन खाली रहेंगे । फिर सात दिन तक घी की वर्षा होगी, और फिर सात दिन खाली रहेंगे । फिर सात दिन तक अमृत व सात दिन तक रस की वर्षा होगी, इस तरह 50 वें दिन जाकर शान्ति स्थापना होगी । सब लोग गुफा में से निकलेगें और यह प्रतिज्ञा ेंगे कि अब कच्छ-मच्छ नहीं खाऐंगे । यह पंचमी का दिन होता है, जब वे अहिंसक

तब माँ ने कहा—"बेटा, तुम इसे ही पूछ लो कि क्या दण्ड दिया जाय।" कुमार बड़ी तीखी नजरों से उस व्यक्ति को देखने लगा।

तब उस व्यक्ति ने बहुत ही विनम्रता भरे शब्दों में कहा—बहिन, जो सजा एक शरणागत को दी जाती है, वही सजा मुझको दी जाय।"

तब वह अपने बेटे से कहती है—"बेटा! इसे क्षमा कर दो और अपनी तलवार से इसके बन्धन तोड़ दो। अब यह हमारा शरणागत है और क्षत्रिय का पहला धर्म शरणागत की रक्षा करना है।"

तब वह कहता है—"माँ! यह क्या कह रही हो तुम, मेरी निकली हुई तलवार का वार खाली नहीं जा सकता है, इसने मेरे पिता की हत्या की है, मैं इसे इसकी सजा अवश्य दूंगा।"

तब माँ कहती हैं—"बेटा! तेरा वार खाली नहीं जाएगा। इससे तुम इसके बन्धन काट दो और एक थाली में भोजन करो। तुम्हें पता होना चाहिए कि कितने ही क्षत्रियों ने शरणागत की रक्षा के लिए अपना जीवन अर्पित किया है।"

देखिये, उस वीरांगना को, जिसने अपने पति के हत्यारे को क्षमा कर दिया। जिसने उसके सुहाग को उजाड़ दिया, उसे यौवन में विधवा बना दिया। यह सब भूलकर उसने केवल उसे शरणागत मानकर क्षमा किया। उसकी यह क्षमा ही वास्तविक क्षमा कही जा सकती है। हमें भी अन्तःकरण से क्षमा-याचना करनी चाहिए, ताकि हमारे अन्तर के पाप कर्म नष्ट हो जाए। शास्त्रकारों ने कहा है कि जो व्यक्ति इस दिन भी वास्तविक रूप से क्षमायाचना नहीं करता है, वह श्रावक स्तर से नीचे उतर जाता है।

इसे कहते हैं—आदर्श क्षमा। शत्रु सामने है, दण्ड देने की शक्ति है, लेकिन उसे क्षमा करके एक थाली में उन्हें साथ भोजन करवाया जा रहा है।

यदि वे उसकी हत्या कर देते तो उनमें वैर के संस्कार बैठ जाते। मगर उन्होंने अलौकिक उदाहरण पेश किया, जिसने उसके सम्पूर्ण जीवन क्रम को ही बदल दिया। बताइये, उसे कितना पश्चाताप हुआ होगा? क्षमा के द्वारा तो क्रूर से क्रूर व्यक्ति के हृदय को भी परिवर्तित किया जा सकता है।

क्षमा का मूल तथ्यः—

हमारा विषय यह है कि हम अपने भीतर की समस्त मलिनता को निकालकर उसे क्षमा रूपी सागर में स्वच्छ करलें। बहुत व्यक्ति कहते हैं—";महाराज! हम तो खमाते है, लेकिन सामने वाला नहीं खमाता।" मैं कहता हूँ चाहे वह खमाये या नहीं, तुम उसे खमाओ, वह स्वतः ही तुम्हारे सामने झुक जाएगा। लेकिन वह क्षमा औपचारिक नहीं होनी चाहिए। वह क्षमा उदायन महाराज जैसी आदर्शवादिता से अनुप्राणित हो।

आपकी लड़ाई हुई है, उससे आपने क्षमायाचना नहीं की तो वह मात्र दिखावा है, वास्तविक भावना नहीं है आप में क्षमा की । आपको चाहिए कि आप पहले उन व्यक्तियों से अन्तरंग से क्षमायाचना करें, जिनसे आपका वेर-विरोध हुआ हो । केवल दिखावटी क्षमा से कोई अर्थ सिद्ध होने वाला नहीं है । क्षमा की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि:—

"सत्यपि सामर्थ्यं अपकारसहनं क्षमा ।

विरोधी से वदला लेने का सामर्थ्य होने पर भी उदार भावना से क्षमा करना ही वास्तव में क्षमा है । क्षमा वही व्यक्ति कर सकता है, जो वीर है। सामर्थ्य के अभाव में विवशतावश की जाने वाली क्षमा वास्तविक क्षमा नहीं कही जा सकती ।

आदर्श क्षमा :—

स्वर्गीय आचार्य भगवन् श्री जवाहर लाल जी म. सा. एक रूपक (आदर्श क्षमादान का) फरमाया करते थे । एक व्यक्ति ने किसी विद्वेष के कारण एक क्षत्रिय की हत्या कर दी थी । उस व्यक्ति के एक छोटा सा पुत्र व उसकी पत्नी ही थी । वह क्षत्राणी अव निःसहाय हो गई थी' लेकिन फिर भी उसने कठोर परिश्रम करके अपने वच्चे में अच्छे संस्कार डाले । उसे विभिन्न कलाओं में निपुण किया और उसमें वीरता के संस्कार भर दिये । अपनी वीरता व पुरुषार्थ के वल पर ही वह कुमार राजा का प्रिय हो गया था । एक वार राजा ने उसे किसी राज्य को परास्त करने के लिए भेजा । कुमार विजय श्री पाकर लौट आया । परिणामतः सम्राट उससे वेहद खुश हुआ व उसे पारितोषिक दिया । इधर जव वह घर आया और मां को प्रणाम करने लगा तो मां ने मुंह फेर लिया ।

तव पुत्र ने कहा कि "माँ, तुम्हें मेरी विजय अच्छी नहीं लगी क्या ? आप ऐसे शुभ समय में ही मुझ से वात नहीं कर रही है और आशीर्वाद नहीं दे रही है, क्या कारण है ?

माँ ने कहा—"वेटे, यद्यपि यह मेरे हर्ष का विषय है, किन्तु मैं तुम्हें कैसे वीर मान लूं, जव तक तुम्हारे पिता का हत्यारा वैठा है ?"

कुमार का खून उवलने लगा । उसने आवेशपूर्ण शब्दों में कहा—"माँ ! तुमने आज तक मुझे वताया नहीं कि मेरे पिता का हत्यारा कौन है ? माँ मुझे जल्दी वताओ, वह कौन है ? वह दुष्ट पुरुष कौन है ?"

माँ ने कहा—"अभी तक मुझे तेरी वीरता पर विश्वास नहीं था, लेकिन अव विश्वास हो गया है कि तुम अपने पिता की हत्या का वदला ले सकते हो" और तव उसकी मां ने उसे उस व्यक्ति का नाम वता दिया ।

कुमार निकल पड़ा—शत्रु को पकड़ने के लिए और उसे जीवित अवस्था में माँ के सामने लाकर खड़ा कर दिया और सिंह की तरह गर्जना करता हुआ वोला—", अव इसे क्या दण्ड दूं ?"

तब माँ ने कहा—"बेटा, तुम इसे ही पूछ लो कि क्या दण्ड दिया जाय।" कुमार बड़ी तीखी नजरों से उस व्यक्ति को देखने लगा।

तब उस व्यक्ति ने बहुत ही विनम्रता भरे शब्दों में कहा—बहिन, जो सजा एक शरणागत को दी जाती है, वही सजा मुझको दी जाय।"

तब वह अपने बेटे से कहती है—"बेटा! इसे क्षमा कर दो और अपनी तलवार से इसके बन्धन तोड़ दो। अब यह हमारा शरणागत है और क्षत्रिय का पहला धर्म शरणागत की रक्षा करना है।"

तब वह कहता है—"माँ! यह क्या कह रही हो तुम, मेरी निकली हुई तलवार का वार खाली नहीं जा सकता है, इसने मेरे पिता की हत्या की है, मैं इसे इसकी सजा अवश्य दूंगा।"

तब माँ कहती हैं—"बेटा! तेरा वार खाली नहीं जाएगा। इससे तुम इसके बन्धन काट दो और एक थाली में भोजन करो। तुम्हें पता होना चाहिए कि कितने ही क्षत्रियों ने शरणागत की रक्षा के लिए अपना जीवन अर्पित किया है।"

देखिये, उस वीरांगना को, जिसने अपने पति के हत्यारे को क्षमा कर दिया। जिसने उसके सुहाग को उजाड़ दिया, उसे यौवन में विधवा बना दिया। यह सब भूलकर उसने केवल उसे शरणागत मानकर क्षमा किया। उसकी यह क्षमा ही वास्तविक क्षमा कही जा सकती है। हमें भी अन्त:करण से क्षमा-याचना करनी चाहिए, ताकि हमारे अन्तर के पाप कर्म नष्ट हो जाए। शास्त्रकारों ने कहा है कि जो व्यक्ति इस दिन भी वास्तविक रूप से क्षमायाचना नहीं करता है, वह श्रावक स्तर से नीचे उतर जाता है।

इसे कहते हैं—आदर्श क्षमा। शत्रु सामने है, दण्ड देने की शक्ति है, लेकिन उसे क्षमा करके एक थाली में उन्हें साथ भोजन करवाया जा रहा है।

यदि वे उसकी हत्या कर देते तो उनमें वैर के संस्कार बैठ जाते। मगर उन्होंने अलौकिक उदाहरण पेश किया, जिसने उसके सम्पूर्ण जीवन क्रम को ही बदल दिया। बताइये, उसे कितना पश्चाताप हुआ होगा? क्षमा के द्वारा तो क्रूर से क्रूर व्यक्ति के हृदय को भी परिवर्तित किया जा सकता है।

क्षमा का मूल तथ्य:—

हमारा विषय यह है कि हम अपने भीतर की समस्त मलिनता को निकालकर उसे क्षमा रूपी सागर में स्वच्छ करलें। बहुत व्यक्ति कहते हैं—',महाराज! हम तो खमाते है, लेकिन सामने वाला नहीं खमाता।" मैं कहता हूँ चाहे वह खमाये या नहीं, तुम उसे खमाओ, वह स्वत: ही तुम्हारे सामने झुक जाएगा। लेकिन वह क्षमा औपचारिक नहीं होनी चाहिए। वह क्षमा उदायन महाराज जैसी आदर्शवादिता से अनुप्राणित हो।

कोशाम्बी नरेश उदायन के यहां एक कुब्जा दासी थी। लेकिन वह दान देने में बहुत सुख महसूस करती थी और बड़ी शुद्ध भावना से दान दिया करती थी। अतः उदायन महाराज ने उसे वही कार्य सौंप दिया और उसे दान-शाला का सचिव नियुक्त कर दिया। वह हार्दिक शुभ भावना से सभी को दान देती थी—चाहे वह सन्यासी हो या याचक। वे तब उसे बहुत आशीर्वाद देते थे। एक दिन एक फक्कड़ साधु आया और उसकी दानशीलता को देखकर बहुत प्रभावित हुआ। उसने एक स्वर्ण गुटिका दी, जिससे न केवल उसका दुःख दूर हुआ, अपितु उसका शरीर भी कान्तिमय हो गया था। इसलिए उसका नाम भी स्वर्णगुटिका रख दिया गया।

उसकी सुन्दरता की चारों तरफ चर्चा होने लगी। उज्जयनि ने के राजा भी उसके सौन्दर्य की प्रशंसा सुनी तो उनकी कामाग्नि प्रज्ज्वलित हो गई। उन्होंने स्वर्ण गुटिका को गुप्त संदेश भिजवाया कि तुम वहां दासी जीवन क्यों व्यतीत कर रही हो? तुम यहां आ जाओ, मैं तुम्हें अपनी महारानी बना दूंगा। तब उस दासी ने कहा कि यदि उनकी क्षमता उदायन महाराज से युद्ध करके विजय प्राप्त करने की हो तो मैं वहाँ आ सकती हूँ।

लेकिन चन्द्र प्रद्योतन में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह कौशाम्बी के शक्तिशाली नरेश से युद्ध करे, परन्तु अब उन्हें स्वर्ण गुटिका के बिना भी चैन नहीं मिल रहा था। अतः उन्होंने उसे रात को चुपके से मंगवा लिया।

उधर जब उदायन महाराज को यह पता चला कि उज्जयनि नरेश ने दास को चुराने जैसा घृणित कार्य किया है तो उनसे यह अन्याय सहन नहीं हुआ। उन्होंने सोचा यदि वे मुझसे मांगते तो मैं उन्हें सहर्ष भेंट स्वरूप दे देता। मगर उन्होंने चौर्य कर्म किया है, वह सर्वथा अनुचित है। जब बाड़ ही खेत को खाने लग जाय तो खेती की रक्षा कौन करे? जब राजा ही चोरी जैसा कार्य करेगा तो साधारण जनता क्या करेगी? यद्यपि उदायन महाराज बारह व्रतधारी श्रावक थे, लेकिन अन्याय व अनीति को सहन नहीं कर सकते थे। उन्होंने प्रतिकार किया और उज्जयनि पर चढ़ाई कर दी। हजारों व्यक्ति मारे गये। शास्त्रकार कहते हैं कि इतनी हिंसा होने पर भी उदायन महाराज का व्रत भंग नहीं हुआ।

धर्म वीरता सिखाता है या कायरता :—

जो व्यक्ति अल्पज्ञानी होते है, वे जैन धर्म पर यह आक्षेप लगाते है कि जैन धर्म कायरता सिखाता है, लेकिन मैं कहूँगा कि जैन तत्व ज्ञान से अनभिज्ञता के कारण ही वे ऐसा कहते हैं। क्योंकि एक श्रावक अहिंसा व्रत स्वीकार करते समय यह व्रत लेता है कि "मैं निरपराध निरपेक्ष त्रस प्राणियों को नहीं मारुंगा। सापराधी हिंसा वह छूट रखता है।" अतः उसका व्रत खण्डित नहीं होता है।

अन्याय के सामने झुकने वाले को जैन धर्म में वीर नहीं, कायर कहा गया है। जैन धर्म कायरता नहीं सिखाता है । यह ठीक है कि जैन धर्म हिंसा में धर्म नहीं मानता। लेकिन श्रावक की अहिंसा व श्रमण की अहिंसा में भेद को स्पष्ट करता है।

उदायन नरेश व संवत्सरी पर्व :—

उदायन नरेश ने उज्जयनि पर चढ़ाई कर दी उसने चन्द्र प्रद्योतन को पराजित ही नहीं किया अपितु उसे जीवित बन्दी बना दिया और उसके हाथ पीछे की तरफ बांध दिये। उसके ललाट पर लिख दिया "मम् दासी पति"। फिर वहां से वे आने लगे तो रास्ते में दशार्णपुर नगर पहुंचे। उस दिन संवत्सरी महापर्व आ गया। उन्होंने वही तम्बू लगवा दिये और पौषध की तैयारी करने लगे।

वे चन्द्र प्रद्योतन को पूर्ण सम्मान देते थे। उन्होंने उज्जयनि नरेश से कहा कि कल मेरे तो पौषध रहेगा, आपको जो कुछ खाना हो बनवा लेना।

प्रद्योतन को इसमें षड्यंत्र की गंध आ गई। उसने सोचा रोजाना तो राजा मेरे साथ भोजन करता हैं और आज नहीं करेगा तो कहीं भोजन में जहर मिलाकर मुझे खिला देगा। अतः उन्होंने कहा कि आपके कल पौषध है तो मैं भी कल पौषध करूंगा। यद्यपि मैं इसकी विधि तो नहीं जानता, मगर जैसा आप करेंगे, वैसा ही मैं कर लूंगा। इस दौरान उन्हें यह मालूम हो गया कि इस पर्व के दिन सांयकाल प्रतिक्रमण करने के पश्चात् उदायन सभी जीवों से खमतखामना करेंगे, अतः अवसर का पूरा लाभ उठा लेना चाहिए।

क्षमायाचना अपराधी से :—

उदायन महाराज का पूरा दिन आत्म-साधना में व्यतीत हो गया था। उन्होंने अपना समस्त चिन्तन सांसारिक प्रवृत्तियों से हटाकर आत्मा-परमात्मा के स्वरूप के अन्वेषण में लगा दिया। सायं प्रतिक्रमण के बाद उन्होंने चौरासी लाख जीव योनियों से क्षमायाचना की और फिर चन्द्र प्रद्योतन के पास पहुंचे। उनसे कहा—भाई मैं तुमसे हृदय से क्षमायाचना करता हूं। आपसे मेरा किसी तरह का बैर नहीं है। आप मुझे अवश्य क्षमा करें।

कितनी उज्जवल व स्वच्छ क्षमायाचना थी उदायन महाराज की ? उन्होंने कोई गलती नहीं की, न उनका कोई अपराध था, फिर भी स्वयं आगे होकर क्षमायाचना कर रहे हैं। आज वहुत से भाई कहते हैं, हमने कोई गलती नही की, हम क्यों क्षमा मांगे ? वह आएगा हमसे क्षमा मांगने।

देखिए उदायन महाराज को। स्वयं वन्दी से क्षमा मांग रहे हैं। वास्तव में क्षमादान से हम छोटे नहीं बनते हैं, इससे तो हमारा वडप्पन ही झलकता है। कहा भी गया है :—

क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात ।
कहा विष्णु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात ।

महान् व्यक्ति ही क्षमायाचना का ऐसा आदर्श उपस्थित कर सकते हैं । आज आप उन व्यक्तियों से घर-घर जाकर क्षमा मांग लेंगे, जिनसे कभी आपका सामना नहीं हुआ हो । मगर जिनसे संघर्ष हुआ है, उनके लिए कहेंगे—"हम नहीं झुकेंगे, हमने झगड़ा नहीं किया है ।"

विचार करिए । इस तरह राग-द्वेष के भाव बढ़ेंगे या घटेंगे ? क्या हम इस महापर्व की इस तरह से आराधना कर सकेंगे ?

शास्त्रकारों ने बताया है कि साधु के मन में किसी के प्रति यदि द्वेष आ जाय तो उसे थूक निगलने से पहले ही क्षमायाचना कर लेनी चाहिए । यदि उसे समय नहीं मिल सके तो भोजन करने से पूर्व, यदि भोजन करने पर भी नहीं हो सके तो संध्या के प्रतिक्रमण में और तब भी नहीं हुआ तो पाक्षिक प्रतिक्रमण के समय क्षमायाचना कर ही ले । यदि पन्द्रह दिनों में भी कषाय कम नहीं हुआ, उसने क्षमायाचना नहीं की तो वह साधु साधुता के स्तर से नीचे उतर जाएगा । इसी तरह यदि श्रावक ने भी आज संवत्सरी के दिन राग-द्वेष की उलझनें/गाठें नहीं खोली तो वह श्रावक स्तर से नीचे उतर जाएगा । काषायिक भावों में आयुष्य कर्म का बन्धन करके वह न जाने किस नरक/तिर्यंच योनियों में जाएगा ?

आज इस पवित्र दिवस पर हमें आत्मावलोकन करके अन्दर में छिपे हुए समस्त कालुष्य को निकालकर हृदय को शुद्ध करना होगा । यदि हमने इस अवसर को खो दिया तो फिर पश्चाताप के सिवाय कुछ नहीं बचेगा । आज संवत्सरी महापर्व है । अतः मेरा यही संकेत है—आप इस पावन प्रसंग पर अपने अन्दर साधना की भावना अधिक से अधिक जागृत करें और विराटता की ओर बढ़ें ।

29 अगस्त, 1987

"हमारे अन्तर्मन में आत्म-ज्योति जगमगा रही है, किन्तु उस पर कषायों के सघन बादल आच्छादित है, जिससे इसका प्रकाश बाहर नहीं फूट पा रहा है। यदि हम सम्यक्त्व धारण कर लें तो उन बादलों को हटा कर आत्म-ज्योति को प्रस्फुटित कर सकते हैं।"

सम्यक्त्व की ओर बढ़ें

सम्यग्दर्शन, अन्तर-चेतना, सम्यग्दृष्टि क्या है ? यह सब आध्यात्मिक विषय हैं। इन्हें हम इन्द्रियों के द्वारा नहीं समझ सकते हैं। इनको समझने के लिए साधनागत जीवन की आवश्यकता होती है। यद्यपि शास्त्रकारों ने जीवन व्यवहार के उदाहरणों-रूपकों के द्वारा इन्हें समझाने का प्रयत्न किया है, लेकिन आज का युग प्राय: भौतिकता में परिणित हो गया है। अत: यह सहजता से समझ में नहीं आ पाता है।

इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि हमारे अन्दर वह आत्म-ज्योति नहीं है, आत्म-ज्योति तो है लेकिन उसे प्रज्जवलित करने वाली दिव्यतूलिका नहीं है। ज्ञानी कहते हैं कि दिव्य प्रकाश प्रत्येक आत्मा में समाया हुआ है, मगर उसके ऊपर सघन बादल आच्छादित हो रहे हैं। अत: उसकी ज्योति आप तक नहीं पहुँच पा रही है। लेकिन जैसे ही आपकी अन्तर-चेतना जागृत होती है, आप कुछ सम्भलने का प्रयास करते हैं।

उदाहरण के लिए जैसे आप कहीं जा रहे हैं और आपके पास दो लाख की रकम है। कुछ दूर जाने पर आपको यह महसूस होता है कि कोई आपका पीछा कर रहा है। तो आप तुरन्त सजग हो जाते हैं।

ठीक यही स्थिति आत्मा की है। ज्ञानीजन कहते हैं कि हमारे भीतर भी अन्तर-शक्ति का स्रोत भरा है, जिसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। लेकिन उस पर विषय पाप रूपी तस्करों लुटेरों ने हमला कर रखा है। अत: हम अपने उस शक्ति-स्रोत तक नहीं पहुँच पा रहे हैं। क्योंकि उन सबका मुखिया मिथ्यात्व है, जिसने अपने सभी सहायकों को पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी है।

उसने हमारी आत्मा को इस कदर दबोच रखी है कि हम चाहते हुए भी स्वतन्त्र नहीं हो पा रहे हैं। कभी-कभी सत्संग में, साधु-संतों के सान्निध्य में जाने से हमारे अन्दर सम्यग्दृष्टि भाव का जागरण होता है। लेकिन कुछ क्षण बाद हम पुन: अपनी पहले वाली स्थिति में आ जाते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि हम उस व्यावहारिक जीवन के इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि हम कितना ही प्रयत्न क्यों न करें उससे अलग नहीं हो पा रहे हैं।

कई लोग तो यह सोचते हैं कि हम महाराज के सम्पर्क में जा रहे हैं, कहीं वे हमारे विचारों को परिवर्तित न कर दें। इस तरह परिवर्तित होना व परिवर्तित करना कोई सहज बात नहीं है। पता नहीं किस महापुण्य योग के कारण यह संयोग बनता है।

महाराष्ट्र में एक एकनाथ नाम के सन्त हुए हैं। एक बार वे तीर्थ यात्रा पर निकले हुए थे। यात्रियों का बहुत बड़ा काफिला उनके साथ था। एक चोर आया। उसने कहा—भगवन ! आप सिद्ध पुरुष हैं, मैं आपके साथ रहना चाहता हूँ। आपके साथ जाकर मैं तीर्थ स्नान करूँगा। जिससे मेरे पाप कुछ हल्के हो जायेंगे। एक धारणा-सी बनी हुई हैं कि तीर्थ-स्नान से पाप धुल जाते हैं, किन्तु एक जगह श्री कृष्ण ने पाण्डवों को सन्देश दिया है कि—

"आत्मानंदी संयमतोयपूर्ण सत्याकहा शीलतटा दयोर्मि।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र ! न वारिणा शुद्धयति वान्तरात्मा॥"

अर्थात् पानी से आत्मा की शुद्धि नहीं होती है। उसके लिए साधना करो। संयम, तप रूपी पानी में आत्मा को स्नान करवाओ। तुम्हें आत्म-शुद्धि प्राप्त होगी। तो चोर ने एकनाथ से आग्रह कर कहा कि—"मैं भी आपके साथ तीर्थ यात्रा करूँगा। एकनाथ ने कहा कि मैं तुम्हारी आदतें जानता हूँ। तुम अपना काम नहीं छोड़ोगे और इससे सभी को परेशानी होगी।" वह बहुत अनुनय विनय करता रहा, अतः एकनाथ जी को दया आ जाती है। उन्होंने कहा—"ठीक है तुम प्रतिज्ञा करलो कि एक महीने तक चोरी नहीं करूँगा तो मैं तुम्हें साथ रख सकता हूँ। मेरी यह यात्रा अब एक माह तक और चलेगी। "तब वह चोर प्रतिज्ञा करता है कि मैं एक माह तक चोरी नहीं करूँगा। इस तरह की प्रतिज्ञा होने के बाद वे आगे बढ़ते हैं और सायं-काल एक गाँव में पड़ाव डालते हैं। दूसरे दिन प्रातः वे सभी क्या देखते हैं कि एक यात्री की चीज दूसरे पर रखी हुई है। इस प्रकार सभी यात्रियों के सामान दूसरी जगह अव्यवस्थित ढंग से रखे हुए हैं। सभी ने यह सोच लिया कि शायद किसी ने मसखरी की होगी इसलिए किसी ने ध्यान नहीं दिया। दूसरे दिन जब प्रातः हुआ तो क्या देखते हैं कि वही स्थिति हो रही थी जो पहले दिन थी। सभी यात्री बहुत परे-शान हो गये। एकनाथ भी बहुत परेशान हुए। तीसरे दिन भी वही अव्यवस्था दिखी, अतः चौथे दिन रात को वे स्वयं इसकी जानकारी के लिए घूमने लगे। अचानक उन्हें एक काली परछाई दिखाई दी। वे आगे बढ़े और उन्होंने उसका हाथ पकड़ा। तब उन्हें पता चला कि यह तो वही चोर है। उन्होंने पूछा कि तुम यहाँ क्या कर रहे हो ? मैं तो अभ्यास बनाए रख रहा हूँ कि कहीं मेरी चोरी की आदत छूट ना जाए। क्योंकि मैंने एक महीने के त्याग किये हैं। बाद में तो मुझे यही कार्य करना है।

आपको चोर की बात पर तो हंसी आ रही होगी, मगर आप स्वयं को देखें की आपकी क्या स्थिति हो रही है ? आपको महान् पुण्यवानी से अच्छा कुल, आर्य

क्षेत्र, साधु-संतों का सानिध्य मिलता है। आप कुछ समय के लिए स्वयं को जागृत करते हैं। आपकी कुछ भावनाएं होती हैं, उच्च स्तर पाने की। मगर फिर कुछ क्षणों पश्चात् ही जब आपको पुनः अभ्यस्तता का झटका लगता है कि आप फिसल जाते हैं। आप इस तरह का दूषित जीवन जीना नहीं चाहते और आप यह भी जानते हैं कि आये दिन आपके कर्म बंधन बढ़ रहे हैं, आत्मा की चादर मैली हो रही है और सम्यक्त्व रूपी हीरे पर अनेक मिथ्यात्त्व रूपी डाकू आक्रमण करना चाहते हैं। यदि हमें अपनी आत्मा को डाकुओं से स्वतन्त्र कराना है, आत्म-चादर की मलिनता धोनी है, जीवन तनाव रहित करना है, तो हमें अपनी आत्मा के प्रति जागृत होना होगा और हमें उस अभ्यस्त जीवन की जड़ें काटकर शुद्ध-संयमी जीवन व्यतीत करना होगा। यदि आपकी साधना शुद्ध होगी तो आपको वास्तविक आनन्द की प्राप्ति होगी और आपका जीवन सफल होगा। ।

इस घटना का अर्थ तो आप पूर्ण रूप से समझ चुके हैं। कहीं आप तो उस अभ्यास क्रम को उसी रूप में बनाए रखने का संकल्प करके नहीं आते हो। आज के व्यक्ति का एक कदम धर्म की ओर बढ़ता है तो दस कदम पुनः पाप की ओर बढ़ जाते हैं। विचार करिए, क्या वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा ? ऐसी स्थिति में आत्म-शान्ति की कामना करना व्यर्थ ही होगा। क्योंकि आप अपनी आत्मा के कल्याण के लिए चौबीस घण्टों में से चौबीस मिनिट भी नहीं दे सकते हो तो फिर आपको शान्ति कहां से मिलेगी ?

यह अमूल्य अवसर आपके पास है। मिथ्यात्व आदि तस्करों से अपने सम्यक्त्व रूपी हीरे की रक्षा कर लीजिए।

31 अगस्त, 1987

"सुसंस्कारों के बिना धर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा नहीं हो सकती और श्रद्धा के बिना तत्व-ज्ञान नहीं हो सकता। तत्व ज्ञान के अभाव में सम्यक् दृष्टि भाव का जागरण नहीं हो सकता और सम्यक्त्व के बिना आत्म-कल्याण नहीं हो सकता। वैसे सम्यग्दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र ये तीनों अन्योन्याश्रित हैं। ये तीनों हमारे जीवन में आने पर ही हमारा जीवन समुज्ज्वल बन सकता है और हम मोक्ष-मार्ग की ओर अग्रसर हो सकते हैं।"

तत्त्व-ज्ञान बिना सम्यक्त्व नहीं

हमारा जीवन अनेक जटिलताओं व रहस्यों से आवृत्त है और उन्हें समझने लिए एक विशुद्ध दृष्टि की आवश्यकता होती है। हमारी आत्मा पर मिथ्यात्व/अन्धकार का सघन आवरण लगा हुआ है, जिससे हमें वाहर से कुछ भी दिखाई नहीं देता है। शास्त्रकारों ने सम्यग्दर्शन को दवोचने वाली आठ कर्म प्रकृत्तियों को मुख्य माना है। यदि हम इनसे निवृत्त हो जायें तो सम्यक् दृष्टि भाव का जागरण हो सकता है। कर्म आठ हैं और कुल प्रकृत्तियाँ 148 हैं—

1.	ज्ञानावरणीय कर्म	5
2.	दर्शनावरणीय कर्म	9
3.	वेदनीय कर्म	2
4.	मोहनीय कर्म	28
5.	आयुष्य कर्म	4
6.	नाम कर्म	103·93
7.	गौत्र कर्म	2
8·	अन्तराय कर्म	5

ये सब मिलकर 148 या 158 होते हैं।

यदि हमें इनका स्पष्ट अर्थ समझना है तो इसका विश्लेषण करना होगा और वहुत गहन अध्ययन तक पहुँचना होगा।

हमारी आत्मा विभिन्न प्रवृत्तियों, विषय-कषायों से जकड़ी हुई है अतः हमारी आत्मा को स्वयं का बोध नहीं होता है। इसका कारण है मिथ्यात्व मोहनीय कर्म। जिसके कारण हमारी आत्मा जन्म जन्मान्तर तक संसार में बंधी रहती है, उसे अनन्तानुबन्धी कषाय कहते हैं। इसके प्रमुख पहलू हैं—क्रोध, मान, माया, लोभ।

अनन्तानुबन्धी क्रोध :—

उसे कहते हैं जिस प्रकार भूकम्प आता हैं, और उसके कारण दरारें पड़

जाती है या पत्थर में दरार पड़ जाती है, जो पुनः कभी नहीं मिटती हैं। उसी प्रकार ऐसा क्रोध जो कभी मिटे ही नहीं।

अनन्तानुवन्धी मान :—

मान को वज्र खम्भे के समान माना गया है। चाहे कितना ही प्रयास करो, लेकिन उसे झुकाया नहीं जा सकता। उसी प्रकार कभी-कभी व्यक्ति इतना कठोर हो जाता है कि चाहे उसे कितना भी क्यों न समझाया जाये, उसमें विनम्रता नहीं आती।

अनन्तानुवन्धी माया :—

वांस की जड़ें आपस में उलझी रहती हैं, उसी प्रकार इंसान भी माया में उलझा हुआ रहता है—छल-कपट के जाल में फंसा रहता है।

अनन्तानुवन्धी लोभ :—

जिस तरह किरमची रंग उतरता नहीं है उसी तरह व्यक्ति की लालसा कभी खत्म नहीं होती। वह अधिकाधिक प्राप्त करने की इच्छा में ही रहता है।

ये चार कषाय एवं सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय—इन सप्तप्रकृत्तियों से हमारी आत्मा वंधी हुई है। इसी कारण यह सम्यक्त्व को भी प्राप्त नहीं कर पाती है। हमारी आत्मा पर कषाय रूपी डाकुओं ने आक्रमण कर रखा है।

लेकिन हमें यह जानकारी तभी हो सकती है, जबकि हम संशोधन करें। इन सातप्रकृतियों का क्षय या क्षयोपशम करें। यह शुद्धिकरण किसी भी व्यक्ति का हो सकता है। यह एक वड़े नेता का भी हो सकता है और एक मजदूर का भी। लेकिन यह तभी संभव हो सकता है, जब हमें इसके बारे में तत्वज्ञान हो। तत्वज्ञान के अभाव में न तो हमारे मन में साधना के प्रति श्रद्धा होगी और न ही विश्वास, लेकिन जैसे ही व्यक्ति को वीतराग वाणी पर श्रद्धा-विश्वास होने लगता है तो उसके भीतर श्रद्धा का सागर उमड़ पड़ता है। फिर चाहे उसे कोई व्यक्ति कितना ही धर्म से अलग करने का प्रयत्न करें, उसका विश्वास तनिक भी खण्डित न ही होता, वरन् वह उन्हें अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करता है तथा अपना अधिकांश समय तत्वज्ञान-धर्मक्रिया में ही लगाता है।

इन सबके पीछे पुनर्जन्म के संस्कार होते हैं। इन संस्कारों के कारण ही व्यक्ति में इतना जागरण आता है कि वह धर्म के सारतत्व की खोज में लगा रहता है। इसके अलावा उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। वह चाहता है कि मैं मरते दम तक इसी मार्ग का अधिक से अधिक विश्लेषण करूं, अनुसरण करूं।

दस वर्ष का वच्चा था—रमेश। उसके संस्कार बचपन से ही धर्म भावना

से परिपूर्ण थे। उसे केवल नवकार मंत्र ही आता था। उसे किसी तत्वज्ञान, कर्म सिद्धान्त या जन्म-मरण की जानकारी नहीं थी। वह अपने माँ-बाप का इकलौता पुत्र था। एक दिन वह अपने दोस्तों के साथ खेल रहा था। अचानक ही एक कीली उसके पैर में चुभ गई थी, लेकिन उसने अधिक ध्यान नहीं दिया और खेलता रहा। उस कीली में जंग लग रहा था। अतः उस लड़के को धनवात हो गया। वह वहुत तड़फड़ाने लगा, माता-पिता उसे अस्पताल ले गये। डाक्टरों ने उसे देखा और कहा कि केस हाथ से निकल गया है। इसे धनवात हो गया है। वहीं उसके लिए एक कमरा लिया और उसे पलंग पर सुला दिया। उस लड़के ने नवकार मंत्र जाप शुरू कर दिया और बहुत तेज-तेज नवकार मंत्र बोलने लगा। यद्यपि वह बिमारी ऐसी थी कि उसका शरीर पलंग से दो-दो फीट ऊपर तक उछल रहा था। उसे अथाह वेदना हो रही थी' मगर फिर भी वह निरन्तर नवकार मत्र बोले जा रहा था। यह स्थिति देखकर उसके माँ-बाप अविरल अश्रुधारा बहा रहे थे। लेकिन वह लड़का विल्कुल भी विचलित नहीं हुआ। उसी समय कहीं से उसके चाचाजी आए, तब उसने कहाकि चाचाजी आप मम्मी-पापा को बाहर भेज दो और मुझे नवकार मंत्र सुनाओ। क्योंकि, अव मुझसे जोर-जोर से बोला नहीं जा रहा है। तव उसके चाचा ने मन को मजवूत करके उसके पापा-मम्मी को बाहर भेजा और उसे नवकार मंत्र सुनाने लगे। थोड़ी देर वाद उसने चाचा से कहा—मुझे कम सुनाई दे रहा है। जरा जोर-जोर से मुझे सुनाओ। तब उसके चाचा जोर-जोर से उसे सुनाने लगे। उधर उपकी माँ अचेत हो जाती है। वह लड़का अपने जीवन के अन्तिम समय में करीब आधा घण्टे पहले तक नवकार मन्त्र गिन रहा है। आवाज नहीं निकल रही है, मगर वह फिर भी अंगुलियों पर गिन रहा है। देखिये, उसकी श्रद्धा को। आपके सामने यह हकीकत मैं इसलिए रख रहा हूँ कि समय या आयु की चर्चा करते हैं कि महाराज अभी तो समय खेलने खाने का है, जव उम्र आयेगी तो धर्म भी करेंगे। लेकिन न तो उम्र का भरोसा है और न ही समय का। न जाने किस पल काल आ जाय और चले जाना पड़े।

यह श्रद्धा तो मनुष्यों में ही नहीं पशुओं में भी होती है। कई बार वे अपने मालिकके लिए अपनी कुर्वानी दे देते हैं। यह श्रद्धा भावना प्रत्येक इन्सान में नहीं होती है। यह तो महा पुण्य योग और पूर्व जन्म के कर्मों के क्षयोपशम के कारण ही मनुष्य में आती हैं।

आजकल जो श्रद्धा होती है वह श्रद्धा सकाम होती है। हम यदि एक सामायिक भी करेंगे तो उसके पीछे दस मनोकामना पूर्ण होने की आशा रखते हैं। मैं कहता हूँ कि आप निष्काम साधना में गतिशील होंगे तो आत्मकल्याण के साथ सभी भौतिक सुख अपने आप प्राप्त होंगे। आप उन चांदी के चंद टुकड़ों के

लिए भगवान को भी इन्हीं में लिप्त कर रहे हैं। इस प्रकार की श्रद्धा से पुण्य का संचय नही, पाप का ही संचय होता है। मैंने कई बार देखा है, माताएं हाथ में माला लेकर फेरती है, कोई नमस्कार मंत्र बोलती हैं और कोई ओम्, सि करती हैं' लेकिन उनका मन चलायमान रहता है। इतना ही नहीं, वे अनेक कामनाएं व आकांक्षाएं पूर्ण होने की कल्पना करती हैं और जब वे पूरी नहीं होती हैं तो धर्म की अवहेलना करती हैं। कहती हैं—महाराज सा. इतना धर्म करते हैं फिर भी हमारा कार्य सिद्ध नहीं हो रहा है।

श्रद्धा तो तुम्हारी इतनी उथली है और तुम कामना करते हो कार्य सिद्धि की ? बताइये, यह कैसे सम्भव हो सकता है ? शास्त्रकार कहते हैं—तुम निष्काम भाव से श्रद्धा भक्ति, साधना करो. देवता स्वयं तुम्हारी सेवा के लिए उपस्थित हो जाएंगे।

1 सितम्बर, 1987

"योग का साधारण अर्थ है—जोड़। अपनी चित्त वृत्तियों को आत्मा से जोड़ना योग है, आत्म केन्द्रित होना योग है, आत्म-स्वरूप को प्राप्त कर लेना अर्थात् सभी प्रकार के कर्म—कषायों से मुक्त हो जाना योग है, और इसके लिए हम जिस प्रक्रिया से गुजरते हैं, वह योगाभ्यास है/कर्म योग है।"

योग क्या है ?

भारत में साधना पद्धति को अनेक रूपों में व्यक्त किया गया है। कर्म योग, राज योग, भक्ति योग, ज्ञान योग आदि। वैसे तो योग का अर्थ होता है जोड़ना, दो तत्त्वों को जोड़कर एक कर देते है, उसे योग कहते हैं।

मगर जैन साहित्य में योग का अर्थ इसके सर्वथा विपरीत माना गयाहै। इसमें योग का अर्थ मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को कहा गया है। वैसे तो इसका विराट् विवेचन किया गया है।

ज्ञान योग, भक्ति योग व कर्म योग का अपना अलग अलग क्षेत्र है। भक्ति योग एक निश्चित सीमा तक चलता है, फिर भक्ति योग कर्म योग में बदल जाता है, और कर्म योग आगे चलकर ज्ञान योग में परिवर्तित हो जाता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से महर्षि पातंजली ने योग की परिभाषा दी है—"योगश्चित्तवृत्ति निरोध:"। लेकिन हम जानते हैं कि चित्त का निरोध संभव नहीं है। क्योंकि चित्त वृत्तियों का स्वभाव है बहते रहना। मन का स्वभाव है—मनन करना, अत: जब तक हमारा मन है तब तक हम मनन करेंगे ही; क्योंकि यह उसका स्वभाव ही है। अत: उसे रोका नहीं जा सकता है।

मन पर नियन्त्रण तो उसी समय हो सकता है, जब हम उस स्तर पर पहुंच जाएं जब हमें उचित, अनुचित का भेद मालूम हो जाए। जब आत्मा-तेरहवें गुण स्थान में पहुंच जाए, वहीं जाकर ही मन की प्रवृत्ति का निरोध हो सकता है। वर्तमान आचार्य श्री नानेश योग की स्पष्ट परिभाषा करते है। "योगश्त्तिवृत्ति संशोध:"। योग का अर्थ है चित्त की वृत्तियों का सम्यक् शोधन करना। मन के मेल को निकाल फैंकना। इसमें भिन्न प्रकार के योग कार्य कर सकते हैं।

हम प्राय: भक्तियोग में लीन रहते हैं। लेकिन, केवल भक्ति योग को सब कुछ नहीं माना जा सकता है। क्योंकि भक्ति-योगी साधक सब कुछ परमात्मा पर छोड़ देता है। जो कुछ करना है, ईश्वर को करना है—अच्छा हो या बुरा, मुझे तो सिर्फ भक्ति करनी है। वह समर्पण की भावना पर आश्रित होता है। इसी दृष्टि से दार्शनिकों ने भक्ति योग की तुलना बाल्यकाल से की है। जीवन की तीन अवस्थाएं हैं—बाल्यकाल, यौवन और वृद्धावस्था। उसी प्रकार साधना की तीन अवस्थाएं मानी गई

है—भक्ति योग, कर्म योग और ज्ञान योग । जैसे बालक अपना सम्पूर्ण भार माँ पर छोड़ देता है—खिलाना-पिलाना, नहलाना, कपड़े बदलना आदि सभी कार्य माँ करती है। वह स्वयं निश्चितता पूर्वक अपनी बाल लीला में मस्त रहता है। माँ अच्छे कपड़े पहनाती है और वह गन्दे कर देता है, माँ पुनः उन्हें साफ कर देती है।

यही स्थिति भक्ति-योगी साधक की होती है। यह भी अपने अच्छे-बुरे कर्मों का सब भार ईश्वर पर डाल देता हैं।

मगर इसे पूर्ण सत्य नहीं माना गया है। क्योंकि यह बात तो उस तरह हो गई कि मिर्च तो आप खाते हैं और कहते हैं कि मुंह जलाने के लिए भगवान आएगा। आप तो ईश्वर को भी अपने बुरे कार्य में शामिल करना चाहते हो।

लेकिन कर्म योगी कहता है—जो कुछ करना है वह मुझे ही करना है। वह सोचता है कि मैं जैसा करुंगा, वैसा ही मुझे फल मिलेगा। वह सब कुछ दायित्व अपने ऊपर लेता है। इसे यौवनावस्था का प्रतीक माना गया है। जिस तरह युवक यह सोचता है कि मुझे अपना काम स्वयं करना है, वह स्वयं पर आधारित होता है, अतः वह जो कुछ भी करता है, सोच-समझकर करता है। यही कारण है कि जैन धर्म भी कर्म योगी साधना पर बल देता है। उसकी यह धारणा है कि हम जैसा करेंगे, वैसा ही फल हमें मिल जाएगा। जैन धर्म का स्पष्ट उद्‌घोष है कि—

"अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं य दुपट्ठिओ सुपट्ठिओ ॥"

गीता में भी कर्म योग को महत्त्व दिया गया है। गीता में एक तरफ यह कहा गया है कि "तुम मेरी शरण में आ जाओ, मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूंगा।" "मामेकं शरणं व्रज, अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोचयिष्यामि"।

इसी तरह उसी गीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन से यह कहा है कि अर्जुन तुम्हें जो कुछ करना है, तुम स्वयं करो। अपनी गति का तुम स्वयं ही निर्धारण करो। तुम जैसा करोगे वैसा ही तुम्हें प्राप्त हो जाएगा। तुम अपना दायित्व स्वयं ही लो।

उद्धरेदातमना आतमानं, नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव बन्धुरात्मनः रिपुरात्मैवात्मन: ॥

कर्म योगी व्यक्ति सोचता है कि मुझे जो कुछ करना है, वह सोच-समझकर करना है। यदि कभी उसका मन अशुभ वृत्ति की तरफ जाता है तो वह तुरन्त सम्भ-लने का प्रयास करता है। वह यह चिन्तन करता है कि मेरा मन गलत मार्ग की तरफ बढ़ रहा है, मुझे उचित मार्ग का चयन करके दिशा परिवर्तित करनी है ताकि मेरी साधना सफल हो जाय। मन को सही दिशा में लाना भी एक बहुत बड़ी साधना है। फिर भी वह अपनी मनोवृत्तियों को शुद्ध करने का प्रयास करता है।

एक युवक बम्बई के जौहरी बाजार में दलाली का कार्य करता था। वह बहुत ही ईमानदार व सत्यवादी था। उसके पास पैसा तो पर्याप्त था, मगर रहने के

लिए मकान नहीं था । अतः वह एक होटल में खाना खा लेता और अपने मित्र के यहां सो जाया करता था । मित्र कहीं नौकरी करता था तथा उसका पायधुनी विस्तार में ऊपरी मंजिल में एक कमरा था, जहां वह अपने परिवार पत्नी और बच्चों के साथ रहता था । वह दलाली करने वाला मित्र उसे अपने व्यापार-व्यवसाय लेन-देन की प्रत्येक बात बताता था । एक दिन वह दोपहर में खाना खाकर दोस्त के यहां आराम करने गया । वहां उस दोस्त की पत्नी व बच्चे कोई नहीं थे । उसने अपने दोस्त से सारी बात की और कहा कि आज मैं बहुत कम समय ही आराम करूंगा । मुझे जल्दी जाना है । किसी पार्टी से सौदा किया हुआ है । उसने कहा-ठीक है । उधर जब वह सोने लगा तो उसने कहा कि देखो यह कोट मैं यहां रख रहा हूं । कोई हाथ नहीं लगाएं, क्योंकि इसमें एक लाख की ज्वेलरी है । तब दोस्त ने कहा यहां हमारे अलावा कोई है नहीं, फिर भी मैं यह दरवाजा बन्द कर लेता हूं । इधर उस व्यक्ति को तो नींद आ गई, मगर जिसने लाख का नाम सुना उसे नींद नहीं आई । उसने सोचा, किस तरह इस धन को प्राप्त किया जाए । क्योंकि यदि मुझे यह मिल जाय तो मुझे यह नौकरो नहीं करनी पड़ेगी, और न ही मुझे यहां रहना पड़ेगा । आराम से गांव जाकर रहूंगा, लेकिन यदि मैं लेकर भाग जाऊंगा तो दोस्त को मुझ पर सन्देह होगा और वह शायद पुलिस को सूचना करदे । उसके विचारों में उतार-चढ़ाव जाता है । अन्त में उसके मन में मित्र के प्रति विश्वासघात और मित्र की हत्या की भावना उत्पन्न होती है । वह सोचता है कि इसे मार दूं तो किसी को पता भी नहीं चलेगा और मेरा काम भी हो जाएगा । वह कहीं से तीखा शस्त्र उठाकर लाता है । उसके गले पर प्रहार करता है और उसकी हत्या कर देता है । अब वह सबसे पहले उस ज्वेलरी को सुरक्षित स्थान पर रखता है । देखिये, उस कृतघ्न इन्सान में पैसे के प्रति मोह, लालसा थी कि उसने अपने प्रियतम मित्र को मारने में दो मिनिट भी नहीं लगाए ।

यह पैसा ही है जो इन्सान को इन्सान से काट देता है । भाई को भाई का हत्यारा बना देता है । पैसे के लिए यह जघन्य कृत्य करके वह नीचे जाता है और एक बड़ा सा सन्दूक लेकर एक टैक्सी चालक से कहता है कि मेरी पुरानी बहियां है, मैं उसे समुद्र में दफनाना चाहता हूं । अतः इस सन्दूक को भरकर ला रहा हूं । उसने पैसे अधिक मांगे तो वह उतने पैसे देने के लिए तैयार हो गया । फिर ऊपर जाकर उसने अपने दोस्त की मृतदेह के टुकड़े किये । उसे, उसके कपड़ों व उस औजार को उसमें डालकर सन्दूक बन्द किया और रस्सी बांधकर उसे नीचे लाया, टैक्सी में उसे रखा और वे जुहू तक पहुंच गये । वहां जाकर उन्होंने उस सन्दूक को पानी में डाल दिया । वे पुनः आए, वहां जाकर उस टैक्सी ड्राइवर ने उससे पैसे, मांगे, लेकिन उसने पर्याप्त पैसे नहीं दिये । इससे दोनों में वाद-विवाद होने लगा । अचानक ही उस टैक्सी ड्राईवर की नजर पीछे उस सीट पर गई जिस पर सन्दूक

रखा था, वहां पर वह खून के धब्बे देखता है। इधर वह व्यक्ति भी संयोग से अभी तक टैक्सी में ही बैठा था। ड्राईवर उस टैक्सी को तुरन्त चला देता है और सीधा पुलिस स्टेशन जाकर रोकता है और पुलिस अफसर से कहता है कि पहले आप इसे गिरफ्तार करें, फिर मैं आपको पूरी बात बताता हूं। उसने कहा कि इस व्यक्ति ने मुझे कहा कि मैं अपनी बहियां समुद्र में दफनाना चाहता हूं लेकिन उस सन्दूक में बहियां नहीं थी, उसमें किसी व्यक्ति की लाश थी। मुझे पहले तो पता नहीं चला मगर बाद में मैंने देखा कि उस जगह खून है, जहां सन्दूक रखी थी, अतः मैं तुरन्त यहां आ गया। उसे गिरफ्तार कर लिया गया और जहां वह सन्दूक छोड़ी वे वहीं गये और उस सन्दूक को निकालकर देखते हैं कि उसमें एक व्यक्ति की लाश के टुकड़े टुकड़े पड़े हुए हैं।

उस व्यक्ति को आजीवन कारावास की सजा मिल जाती है। बताईये, क्या मिला उसे कृतघ्नता से ? आजीवन कारावास, कलंक, बदनामी, उसके बच्चे व स्त्री का विलाप।

याद रखो कि ईमानदारी और पसीने की कमाई का पैसा ही मानसिक शान्ति देता है, फलता-फूलता है। अन्याय व अनीति से उपार्जित पैसा कभी भी शान्ति नहीं देगा, और न ही कभी फलीभूत होगा। उससे आप एशो-आराम के साधन भले ही जुटालें, मगर शान्ति नहीं मिलेगी। आज अच्छे-अच्छे करोड़पति हैं, उन्हें किसी बात की कमी नहीं है, लेकिन फिर भी उनके मन-दिमाग में शान्ति नहीं है।

आजकल आप देख रहे हैं कि सरकार ने लॉटरी कार्यक्रम चला रखा है। यह सफेद जुआ है, जिसमें व्यक्ति को गुमराह किया जाता है। उसे इस बात का लालच दिया जाता है कि बिना मेहनत किये लाखों रुपये प्राप्त करो। इस तरह उन्हें आशान्वित बनाकर उनसे करोड़ों रुपये प्राप्त करती है—सरकार। मगर फिर भी सरकार की क्या हालत हो रही है ? दिन प्रतिदिन घाटा व कर्ज लेना पड़ रहा है।

मूल बात यह है कि कर्म योगी व्यक्ति सोचता है कि मैं कुछ करूंगा उसका फल मुझे ही भुगतना पड़ेगा, चाहे मैं सत्य करूंगा या असत्य, उसका दायित्व मुझ पर ही आएगा।

आप इस पर चिन्तन मनन करें ताकि आप अपने आपको अधिक से अधिक कर्म बन्धन से बचा सकें। आपको सौभाग्य से वीतराग वाणी का अमृत रस श्रवण करने को मिल रहा है। आप ऐसा वातावरण बनावें कि आत्म-साधना/आराधना तन्मयता से कर सकें और अपने जीवन को शुद्ध साधना में लगा सकें।

2 सितम्बर, 1987

———

"भक्तियोग, कर्म योग और ज्ञान योग इन तीनों का योग है–सहज योग। हमारे मन की सारी प्रवृत्तियाँ सहज ही आत्मा के प्रति समर्पित हो जायें। आत्मा से एकाकार होना ही सहज योग है। शुद्ध व सरल हृदय वाला व्यक्ति ही सहज योग की साधना कर सकता है।"

सहज योग

योग के तीन प्रमुख आयाम माने गये हैं—भक्ति योग, कर्म योग, ज्ञान योग। यदि हम विभिन्न साधना पद्धतियों का विश्लेषण करें तो हम इनकी गहराई में पहुँच सकते हैं।

भक्ति योगी :—

भक्ति योगी व्यक्ति में समर्पण की भावना होती है। वह अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को समर्पित कर देता है और वह सोचता है कि उसका स्वयं का कुछ नहीं है। जो कुछ भी है–ईश्वर का है और ईश्वर को जो कुछ करना है, वही करेगा। मेरा अपना स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं है। जिस प्रकार पानी की एक बूंद, जब सागर में मिल जाती है तो उसका स्वयं का स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो जाता है। उसी प्रकार भक्ति योगी अपने आपको परमात्मा में मिला देने की कामना करता है। उसकी भावना समर्पण की भावना होती है।

वह सब कुछ ईश्वर पर ही छोड़ देता है, उसकी यह धारणा होती है कि मेरे अच्छे बुरे कार्य का कर्त्ता वही है। इसी कारण इसे बालक की उपमा दी गयी है।

कर्म योगी :—

लेकिन, कर्म योगी व्यक्ति इसके ठीक विपरीत होता है। वह समर्पण की भावना नहीं रखता है। वह तो सोचता है कि जैसा करूंगा. वैसा ही फल मुझे मिलेगा। वह स्वयं का स्वतन्त्र अस्तित्व मानता है। बूंद की तरह अपना अस्तित्व खोना नहीं चाहता, अपितु बीज रूप में से होकर वह वट वृक्ष बनने की कामना करता है। वह परमात्मा को सहयोगी मानता है, मगर पूर्ण विलीन नहीं होना चाहता। वह स्वयं परमात्मा का स्वरूप बनना चाहता है। उसकी धारणा यह होती है कि मेरी आत्मा में ही इतनी शक्ति है कि मैं परमात्मा बन सकता हूँ।

कर्म योगी व्यक्ति को युवक की संज्ञा दी गयी है। जिस प्रकार युवक अपना स्वयं का दायित्व लेकर चलता है, वह यह सोचता है कि जो कुछ करना है मुझे

करना है। वह अपना निजी अस्तित्व समाप्त नहीं करना चाहता। उसी प्रकार कर्म योगी व्यक्ति कर्म को प्रधानता देकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखना चाहता है।

वैसे आमतौर पर आजकल भारतीय जनमानस भक्तियोग पर आश्रित है। यद्यपि वे समर्पण की भावना से भक्ति करते हैं, मगर फिर भी उनकी भावना शुद्ध नहीं होती है। वे पूजा सामग्री के द्वारा अपनी भावना का समर्पण करते हैं, मगर इससे उनका स्वयं का समर्पण नहीं होता है। वह समर्पण उथले स्वरूप को प्रकट करता है।

जो पुरुषार्थी होते हैं, वे परमात्मा को अपनी समर्पण भावना में सहायक मानते हैं, लेकिन पूर्ण समर्पित नहो होते हैं। जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है—भक्ति योग की तुलना बच्चे से की गई है। जिस तरह बच्चा पराश्रित होता है, उसे माँ नहलाकर अच्छे कपड़े पहनाती है और फिर वह मिट्टी में खेलने लग जाता है। उसे यह ध्यान नहीं रहता है कि यह कपड़े गन्दे हो जायेंगे। उसी तरह भक्ति योगी व्यक्ति भी यह सोचता है कि मेरा जो कुछ करेगा, वह ईश्वर ही करेगा। मुझे अपने आप कुछ नहीं करना है।

किन्तु कर्म योगी व्यक्ति सम्पूर्ण दायित्व अपने ऊपर ही लेता है। वह यह सोचता है कि मेरे ऊपर जो विषय-कषाय का आवरण आ रहा हैं, मुझे ही उस आवरण को हटाना है और वास्तविक स्थिति का अवलोकन करना है। वह अपने सत्य स्वरूप को पाना चाहता है।

वास्तव में देखा जाए तो शरीर, वैभव, सत्ता-सम्पत्ति सभी कुछ वैभाविक सम्बन्ध हैं और ये सभी हमारे आत्म-जागरण/आत्म-शुद्धि में बाधक हैं। जब व्यक्ति इनसे अलग हो जाता है, तब वह उस स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। यदि वह उन्हीं में लिप्त रहता है तो वह उस वास्तविक स्वरूप-लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता है।

इस्लाम के एक अच्छे फकीर हुए हैं—अम्ब हुव्जा खुरासानी। वे एक बार पद यात्रा कर रहे थे। यात्रा करते-करते वे एक भयंकर जंगल में पहुंच गये। जंगल में जाते समय उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिए कुछ भी साथ नहीं लिया। यहां तक कि एक लोटा पानी भी नहीं। उन्होंने सब कुछ अल्ला पर छोड़ दिया कि उसे जो मंजूर होगा, वही होगा। वे पूर्ण समर्पण की भावना से आगे बढ़ते चले जा रहे थे। उन्हें किसी भी प्रकार का भय नहीं था। जैसी कि कहावत है :—

"माया को डर होता है काया को डर नहीं होता।"

इसी तरह मैं अपने साथ घटित एक घटना बता देता हूं। जब हम छत्तीस-गढ़ विहार करके जा रहे थे तो कोण्डा ग्राम से जगदलपुर तक पहुंचे। वहां से हम

गीदम जाना चाहते थे। कोण्डा ग्राम के लोग कहने लगे—महाराज श्री जी, इधर आप ना जाएं, हमारी बदनामी हो जाएगी। तब मैंने पूछा कि भाई ऐसी क्या बात है? तब वे कहने लगे—इधर ऐसे लोग रहते हैं, जो चलते इन्सान पर धनुष चलाते हैं। तब मैंने कहा— भाई हमारे पास तो कुछ है नहीं, यह ओघे पात्र हैं, अगर यह वे लेगें तो क्या करेगें। मैंने कहा—हम तो इधर ही विहार करेगें। क्योंकि "माया को डर होता है, काया को नहीं।"

मूल बात यह है कि जहां माया का आवरण रहता है, वहां भय की स्थिति रहती है। जिसके पास अपनी काया है, और कुछ नहीं है, उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं रहता।

उधर वे अम्बहुब्जा खुरासानी चल रहे थे। चलते चलते अचानक ही उनका हाथ अपने कुर्ते की जेब में चला गया तो उन्हें ऐसा लगा कि किसी बिच्छू ने डंक मार दिया, क्योंकि उस जेब में एक सोने की मुहर थी, जो कि उन्हें संसार पक्ष की बहन ने दी थी। उन्हें लगा कि अभी तक मैं पूर्ण रूप से समर्पित नहीं हुआ हूं। मुझे अभी ईश्वर पर पूरा भरोसा नहीं है। तभी तो मैंने इस मोहर को अपनी जेब में रख रखा है। थोड़ा दूर आगे गऐ तो उन्हें एक जलाशय दिखाई दिया। उन्होंने उस मुहर को तत्काल ही निकाल कर उसमें फेंक दी। तब उन्होंने अपने आपको बेहद हल्का महसूस किया। उन्हें अथाह शान्ति की प्राप्ति हुई। उन्होंने सोचा, अब मेरे में स्वयं के प्रति मोह नहीं हैं। अब मैं ईश्वर के प्रति पूर्णरूप में समर्पित हो गया हूं।

मूल बात यह है कि ये जितने भी बाहर औपचारिक तत्त्व है, ये सभी बंधन के कारण हैं। ज्ञानियों ने तो इस शरीर को भी बंधन का कारण माना है। जब तक इनके प्रति अनासक्ति नहीं होगी, तब तक उस परम तत्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकेगी।

जिस मरने से जग डरे, मुझ मन अति आनन्द।
मरने ही से पाइये, पूरण परमानन्द॥

जिस मरने से संसार डरता है, उसे प्राप्त करने में मुझे बेहद खुशी महसूस होगी, क्योंकि इस शरीर को छोड़ने से पहले परमात्मा की प्राप्ति नहीं होगी। उसे प्राप्त करने के लिए शरीर को तो छोड़ना ही पड़ेगा।

इस तरह कर्मयोगी भी रूपान्तरित होना चाहता है, लेकिन वह पूर्ण समर्पण नहीं चाहता। जैसे बीज, समय व अनुकूल परिस्थितियां पाकर वट-वृक्ष के रूप में परिवर्तित होता है, लेकिन वह बूंद की तरह विलीन नहीं होता। वह अपना अस्तित्व रखना चाहता है। जिस तरह आग की एक चिनगारी भी भयंकर स्वरूप धारण कर लेती है, उसी तरह कर्मयोगी व्यक्ति भी अपने स्वरूप को विराट् में परिवर्तित करने की कामना करता है।

ज्ञान योग की तुलना वृद्धावस्था से की गई है। यद्यपि वृद्ध व्यक्ति में वह कर्मठता नहीं होती, जो कि एक युवक में होती है। फिर भी उन्हें अपने जीवन की

गहराई की गहन अनुभूति होती है। उसी तरह ज्ञानयोगी भी ज्ञानार्जन के क्षेत्र में रमण करता है।

सहज योग—

ये तीनों योग मिलकर सहज योग का निर्माण करते हैं। यानि कि तीनों योगों को मिलाकर उसे सहज योग का नाम दिया गया है। सहज योग का तात्पर्य यह है कि हम जो कार्य करते हैं, उसी में खो जाएं। हमारे मन की सारी प्रवृत्तियां उसके प्रति समर्पित हो जायें। इस प्रकार के जीवन में किसी प्रकार का छिपाव नहीं होता है जो कुछ होता है, वह स्पष्ट व स्वतन्त्र रूप में ही होता है। जिस कार्य में हम लगे हुए हैं, यदि उस कार्य के प्रति ही हम समर्पित हो जाते है, तो वह साधना सहज के रूप में जानी जाएगी। इस तरह की साधना से ही हम परमात्मा की प्राप्ति कर पाएगे।

इसलिए शास्त्रकारों ने कहा है:—

"सोहि उज्जुय भूयस्स, धम्मोसुहस्य चिट्ठइ।"

अर्थात् शुद्ध व सरल हृदय वाला व्यक्ति ही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। उसी हृदय में धर्म रहता है।

कहते हैं—"एक बार महात्मा ईशु मेले में जा रहे थे। चलते चलते ही उनसे किसी ने पूछ लिया कि स्वर्ग किसे प्राप्त होगा? ईशु ने पाँच साल के बच्चे को उठाकर कहा कि जो व्यक्ति इसके समान सरल होगा। उनके कहने का अर्थ यह था कि परमात्मा को पाने के लिए शुद्ध सरलता की आवश्यकता होती है। जो सरल हृदय होगा, वही स्वर्ग में जाएगा।

स्वर्ग में सभी जाना चाहते हैं, लेकिन कार्य करते हैं—सन्देह से परिपूर्ण। शुद्ध साधना का अभाव है, पूरा वातावरण दूषित हो रहा है। ऐसी स्थिति में जब क्षणिक शान्ति ही मानव को नहीं मिल रही, तो स्वर्ग की प्राप्ति होना तो बहुत दूर है।

आज लोगों का जीवन मकड़ी के जाले की तरह परस्पर इस तरह से उलझा है कि लाखों प्रयत्न के बाद भी उन्हें अलग अलग रूप से नहीं गिना जा सकता है। आज बहुसंख्य समुदाय में एकाग्रता/तल्लीनता का अभाव है। माला फेरते हैं, लेकिन ध्यान घर में रखी हुई तिजोरी की तरफ जा रहा है। सामायिक कर रहे हैं, रुपयों की गड्डी हाथ में है, रुपये गिन रहे हैं। इसका प्रमुख कारण यह है—आप लोगों को धर्म के प्रति श्रद्धा व विश्वास नहीं। आप का वायुमण्डल ही ऐसा है कि हर जगह मिलावट नजर आ रही है, इसी कारण ही भक्ति श्रद्धा में भी मिलावट होने लगी है।

अपनी श्रद्धा को निर्मल बनाईये और कर्मयोग एवं ज्ञान योग की गहराईयों में पहुँच कर आत्मस्थ बनिये।

3 सितम्बर, 1987

"कोई ईश्वरीय शक्ति हमें कर्म करने की प्रेरणा नहीं देती और न ही वह फल देने आती है। हाँ, उनके इतिहास से, कथानकों से, उनके जीवन प्रसंगों से हम स्वयं प्रेरणा अवश्य ले सकते हैं। जहाँ तक फल का प्रश्न है--हमारी शुभ-अशुभ प्रवृत्तियां ही हमें शुभ-अशुभ फल देती हैं।"

ईश्वरवाद

भारतीय संस्कृति में विभिन्न साधना पद्धतियां दृष्टिगोचर होती हैं। इन सब साधना पद्धतियों का मूल उद्देश्य ईश्वर के निकटतम पहुँचने का है। सब ही आनन्द चाहते हैं—सुख चाहते हैं, लेकिन वे उसे प्राप्त करने के लिए अलग-अलग पद्धति अपना रहे हैं। इनमें मुख्य है—वैदिक संस्कृति व अवैदिक संस्कृति।

वैदिक संस्कृति—

वैदिक संस्कृति ईश्वर को संसार का रचयिता मानती है। उसकी दृष्टि में संसार की उत्पत्ति, विकास, संहार सभी कुछ ईश्वर करता है। यह सम्पूर्ण दायित्व तीन शक्तियों के हाथों में है।

ब्रह्मा संसार की उत्पत्ति करते हैं। जो कुछ भी पैदा होता है, वह सभी कुछ ब्रह्मा की कृपा से ही होता है। ब्रह्मा ही सृष्टि का सृजेता है।

विष्णु को दूसरी शक्ति के रूप में स्वीकार किया है, जो कि सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन करते हैं।

शिव को तीसरी शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है, जो सृष्टि में प्रलय लाती है, अर्थात् सृष्टि का विनाश करने वाली है।

अवैदिक संस्कृति—

ये सब मान्यताएँ वैदिक संस्कृति की हैं। लेकिन अवैदिक संस्कृति जिसमें जैन-बौद्ध धर्म आते हैं, उन्होंने ईश्वरीय स्वरूप को कर्त्ता के रूप में नहीं माना है। उनके अनुसार ईश्वर एक शक्ति के रूप में अवश्य है, लेकिन उसका संसार के किन्हीं कार्यों से कोई लेना देना नहीं है। जैन धर्म की इस मान्यता के कारण ही उसे कुछ वैदिक विद्वानों ने नास्तिक धर्म के रूप में माना है। वैसे ये सब मान्यतायें लोगों की स्वयं की हैं। अतः जो व्यक्ति वेदों में श्रद्धा रखता है, उन्हें मानता है, उसे आस्तिक और जो नहीं मानता उसे नास्तिक कहा गया है।

लेकिन यह कोई जरूरी नहीं कि जो ग्रन्थ तुम बनाओ, सभी उसे स्वीकार करें ही।

पाणिनी संस्कृत के महान् पण्डित हुए हैं, जिन्होंने आस्तिक की बहुत ही सूक्ष्म व स्पष्ट परिभाषा की है—

"अस्ति नास्ति मतिर्यस्य स आस्तिक:" ।

जो व्यक्ति पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक के स्वरूप को मानता है, वह आस्तिक है और जो नहीं मानता, वह नास्तिक है। लेकिन इस रूप में वे किसी ईश्वरीय सत्ता को संसार का कर्त्ता नहीं मानते हैं। वे तो स्वयं के कर्म को ही महत्त्व देते हैं।

जैसे आजकल अधिकांश लोगों की मान्यता होती है कि जो कुछ करना है, जैसा करना है, भगवान करेगा। लेकिन यह तर्क युक्ति संगत नहीं है। क्योंकि कर्म तुम करो और फल देने के लिए भगवान आए। मेडिसन तुम लो और प्रभाव डाले ईश्वर। मिर्च तुम खाओ और मुँह जलाने भगवान आए। लोग ऐसी कल्पना क्यों करते हैं? यह सब बहुत विचित्र लगता है। यदि इस तथ्य को जरा गहराई से लें तो यह विचार आएगा कि जो परमात्मा सबको पैदा करता है, वह इस प्रकार का विभेद क्यों करेगा? क्यों ऊँच-नीच के भेद भाव, गरीब-अमीर की दिवार बनेगी? उसके लिए तो सभी समान है। अत: कृर्तत्व का यह तथ्य मिथ्या ही लगता है।

वे वीतरागी भगवान, जो अपने स्वरूप में रमण करे, वे इस तरह की रचना नहीं करते हैं। व्यक्ति जिस प्रकार के कर्म करता है, वैसा ही स्वरूप उसे प्राप्त हो जाता है।

जैन तत्व ज्ञान यह मानता है कि यह संसार अनादिकाल से चलता आ रहा है। यह कभी पूर्ण नष्ट नहीं हुआ है। इतना अवश्य है कि इसके स्वरूप में समय-समय पर अनेक उतार-चढ़ाव आए हैं। यदि हम यह मानलें कि संसार की उत्पत्ति ईश्वर ने की है तो यह प्रश्न उठता है कि उसने इंसान में इस प्रकार का विषम भाव क्यों रखा? कुछ कहते हैं—ईश्वर ने तो सबको एक साथ एक समान बनाया, मगर सबने अपने कर्मों के अनुसार अलग-अलग रूप ग्रहण कर लिया हैं। यहाँ भी यह विचारणीय है कि जब सृष्टि रचना के पूर्व कोई था ही नहीं तो कर्म करने की बात ही कहाँ से उठेगी?

कभी यह भी कहा जाता है कि ईश्वर की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता है। तो बताइये, क्या ईश्वर लोगों को गलत काम चोरी, झगड़ा आदि करने की प्रेरणा देते हैं?

जैन तत्व ज्ञान इस बात को नहीं मानता है कि ईश्वर कुछ कराता या करता है। यह दृष्टि जैन तत्त्व ज्ञान की नहीं है। जैसा कि कहा गया है—

"अप्पा कत्ता विकत्ताय दुहाण य सुहाण य"।

वैदिकों ने भी कहा है—"स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमस्नुते।"

कोई ईश्वरीय शक्ति कर्म करने की प्रेरणा नहीं देती, न ही वह फल देने आती है। जैसी हमारी प्रवृत्तियां होती हैं, वैसा ही फल हमें प्राप्त हो जाता है। यदि हमारी प्रवृत्तियां शुभ हैं तो हमें शुभ फल प्राप्त हो जाता है और यदि हमारी प्रवृत्तियां

अशुभ होती हैं तो अशुभ फल प्राप्त होता है। कुछ कर्म तो ऐसे होते हैं कि हमें तत्काल ही उनका फल प्राप्त हो जाता है। मगर कुछ ऐसे होते हैं जिनका फल कुछ समय के बाद में प्राप्त होता है। यह निश्चित है कि फल तो मिलता ही है।

ज्ञान योग व कर्म योग भी हमें यह प्रेरणा देते हैं कि अनुचित-अनैतिक-असंयमी प्रवृत्तियों से हटकर सद्वृत्तियों में रमण करें। लेकिन आज तो स्थिति सर्वथा इसके विपरीत है। लोग सद्वृत्तियो से दूर व कुप्रवृत्तियों के निकटतम होते जा रहे हैं। मैंने एक कहानी पढ़ी है—

एक युवक नौकरी करता था। वह सत्यनिष्ठा व सदाचारिता से अपना काम करता था। वह कभी एक पैसे की भी रिश्वत नहीं लेता था। वह अपनी आय से सन्तुष्ट था। लेकिन उसकी पत्नी दूसरे विचारों की थी। वह उसे कहती कि तुम रिश्वत नहीं लेते हो अतः हम न तो अच्छा खाना खा सकते हैं और न अच्छा पहन सकते हैं। देखो, अमुक-अमुक लोगों के टी.वी., फ्रीज, स्कूटर हैं। सब आराम की जिन्दगी जी रहे हैं और हमें कुछ भी सुविधा प्राप्त नहीं है। जो जिन्दगी आराम में व्यतीत होनी चाहिए वह अभाव में व्यतीत हो रही है।

वह कहता है कि बेईमानी का पैसा घर में अशान्ति लाता है। अतः मैं यह काम नहीं करूंगा। लेकिन वह उसे बार-बार कहती रही। वह उसे बार-बार टालता रहा। जब बहुत परेशान करने लगी तो उसने हथियार डाल दिये और कहा कि तुम मुझे इसके लिए मजबूर कर रही हो, लेकिन तुम इस बात को हमेशा ध्यान में रखना कि अनीति का पैसा कभी शान्ति नहीं लाएगा। उस दिन वह ऑफिस जाता है। एक व्यक्ति आया। उसने उसे 200 रु. दिये काम के लिए, रुपये लेते समय उसका रोंआ-रोंआ दुःखित हो रहा था। शाम को वह घर जाता है तो क्या देखता है कि घर पर ताला लगा हुआ है। वह पड़ौस में जाकर पूछता हैं तो वह कहते हैं आपका लड़का छत मे गिर गया था। अतः वह उन्हें लेकर अस्पताल गई है। तब वह तुरन्त अस्पताल जाता है। वहाँ देखता है कि उसकी पत्नी रो रही है। वह डाक्टर से जाकर पूछता है तो डाक्टर कहता है चोट गहरी है, हम कह नहीं सकते कि बच जाएगा। तब उस व्यक्ति के हृदय में एक झटका लगता है। वह तुरन्त साईकिल उठाकर निकल जाता हैं और वहीं जाता है, जिससे उसने रिश्वत ली थी। वह दो सौ रुपये उसे पुनः वापस कर देता है। तब उसे अथाह शान्ति महसूस होती है। अस्पताल आता है और डाक्टर से पूछता है कि बच्चा कैसा है ? तब डाक्टर कहते हैं कि अब वह खतरे से बाहर है।

वह मन ही मन भगवान को नमस्कार करता है। तब उसकी पत्नी पूछती है— आप आज यह क्या कर रहे हो। मुझे तो कुछ समझ नहीं आ रहा है। तब वह कहता है, मैं भगवान को नमस्कार कर रहा हूँ, जिसने मुझे समय पर सचेत कर दिया, जिससे हमारा बच्चा बच गया है। तुमने मुझसे जिद्द की रिश्वत के लिए। मैंने ली।

अब तुमने उसका नतीजा देख लिया। मेरी अन्तरात्मा मुझे कचौट रही थी। लेकिन जब मैंने उसे रुपये वापस कर दिए तो हमारा बच्चा बच गया। मैं मानता हूँ, यह मेरी नैतिकता के कारण ही हुआ है।

तब पत्नी माफी मांगती है और कहती है कि अब मैं कभी आप से इस तरह का पैसा लेने के लिए नहीं कहूँगी। हमें जितना मिलेगा हम उतने में ही अपना गुजारा कर लेंगे। कभी-भी अनीति से पैसा प्राप्त नहीं करेंगे। यद्यपि यह सत्य घटना है, लेकिन आपके विचारों से काल्पनिक हो सकती है। क्योंकि आप कहेंगे-महाराज सा. हजारों व्यक्ति रिश्वत लेते हैं। परन्तु जो व्यक्ति जैसा कार्य करता है, उसे वह फल मिलता ही है। हजारों व्यक्ति जब रिश्वत लेते हैं तो निश्चित उन्हें उसका फल प्राप्त होगा ही। आज नहीं तो कल। वैसे भी मन को संक्लेश तो आज प्रत्येक व्यक्ति को होता है। अतः मैं यह कहना चाहता हूं कि आप कर्मयोगी बनें और निष्काम भावना से साधना करें, ताकि आपका जीवन सफल बनें।

4 सितम्बर, 1987

"प्रत्येक मानव परम आनन्द की प्राप्ति करना चाहता है, किन्तु आज चारों तरफ अन्धकार के सघन बादल आच्छादित हो रहे हैं। प्रायः हर व्यक्ति ने अपनी जिन्दगी की नाव को पाप व पीड़ा के बोझ से भर रखी है, फिर वह भवसागर में डूबेगी नहीं तो क्या होगा ? इस डूबने के लिए हमारे संस्कार ही बहुत हद तक जिम्मेदार हैं। क्यों न हम इस भावी पीढ़ी में सु-संस्कारों का बीजारोपण करें, ताकि वह वास्तविक आनन्द/परमानन्द की प्राप्ति कर सके।"

वास्तविक आनन्द की प्राप्ति कैसे हो ?

प्रत्येक प्राणी यह चाहता है कि मैं सुखी रहूं मुझे शान्ति व परम आनन्द की प्राप्ति हो। छोटे से छोटा व्यक्ति भी जो कार्य करता है, उसमें भी उसकी यही भावना रहती है कि मुझे आनन्द की प्राप्ति हो। मगर क्या वास्तव में हमने ऐसे कार्य किये या ऐसे कार्य कर रहे हैं कि जिससे हमें सुख की प्राप्ति हो ?

हम आज देख रहे हैं कि लोगों का जीवन तनावों व संघर्षों से भरा है। उनका जीवन जिस दिशा में आगे बढ़ रहा है उस दिशा में आनन्द की प्राप्ति तो दूर, क्षणिक वास्तविक शान्ति की कल्पना करना भी व्यर्थ है। चारों तरफ लोगों में हाहाकार मच रहा है। व्यक्ति-व्यक्ति के खून का प्यासा बना हुआ है। ऐसे में क्या सुख की प्राप्ति संभव है ? नहीं, कदापि नहीं।

यदि सुख प्राप्त करना है तो अपने अन्तर में रमण करना होगा, अपने अंतरंग का परीक्षण करना होगा। बाहरी चकाचौंध से हटकर आत्म-चिन्तन करना होगा तब ही वह सुख प्राप्त हो सकता है। सुख कोई बिकाऊ चीज नहीं है जिसे बाहर से प्राप्त किया जा सके। यह तो आपके स्वयं की अनुभूति है। जैसे-जैसे आपके विचार शुद्ध व पवित्र होंगे, वैसे ही आपको जीवन में उसी मात्रा में सुख की प्राप्ति होती जाएगी। जब हम आत्म-चिन्तन करेंगे तो हमें महसूस होगा कि हमारे भीतर शक्ति-स्त्रोत का अथाह सागर लहरा रहा हैं, उसे प्राप्त करने के लिए हमें प्रयत्न करना होगा। आज हमारे चारों तरफ अन्धकार के सघन बादल आच्छादित हो रहे हैं। अत: इस आवरण के कारण हमारी दृष्टि उस शीतल समुद्र का अवलोकन करने में सक्षम नहीं हो पा रही है। अन्दर में बैठा ईश्वर-विभिन्न ज्ञानी संत, महात्मा कहते हैं— हे मूर्ख मनुष्य, तू परमात्मा को प्राप्त करने के लिए क्यों भटक रहा है ? तेरा परमात्मा तो तेरे ही अन्दर है। तू अपनी दृष्टि दिव्य बनाले ताकि तुझे परमात्मा के दर्शन हो जाएंगे और तेरा भटकना समाप्त हो जाएगा—तुझे सच्चिदानन्द प्राप्त हो जाएगें और फिर यह नश्वर संसार तुच्छ महसूस होगा।

इसी तरह तुलसीदास जी ने भी रामायण में लिखा है कि हमारी चेतना-शक्ति प्रभु को देख नहीं पाती है, प्रभु तो घर घर में विराज रहे हैं—

सियाराम मय सब जग जानि।
करहुं प्रणाम जोरि जग पानि।

यह सत्य है कि हमारे ऊपर बाह्यमुखी क्रियाओं, कर्मकाण्डों, बन्धनों के सघन आवरण आये हुए हैं। उनको यदि हम दूर हटा दें तो हमें परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। हमारी आत्मा उस परमात्मा रूपी समुद्र की एक बूंद है जो हमारे से बिछुड़कर यहां संसार माया के सम्पर्क में आकर अत्यन्त मैली हो गई है। परमात्मा हमारे भीतर ही है, कहीं बाहर नहीं। बाहर वह न कभी किसी को मिला है, न मिल सकेगा। संसार बाहर नौ द्वारों में उसे ढूंढ रहा है—लेकिन वह अन्तर में विद्यमान है और उस अन्तरतम की चाबी सन्तों के हाथ में होती है। यदि आप चाहें तो प्रयत्न के द्वारा उसे प्राप्त कर सकते हैं।

दिग्भ्रमित परिवेश :—

लेकिन हम वर्तमान में देख रहे हैं, बड़ी विचित्र स्थिति है। आज की पीढ़ी किस ओर अग्रसर हो रही है? हर व्यक्ति ने अपनी जिन्दगी की नाव को पाप व पीड़ा के बोझ से पूर्णरूप से भर रखी है, और इस कारण भयानक भवसागर में तैरने की लाख कोशिश के बाद भी लोग बह जाते हैं। केवल वे ही व्यक्ति बच सकते हैं, जिन्होंने अनुभवी कप्तान को अपने साथ ले लिया है और वह पूर्ण विवेक से उस जहाज को चला रहा है।

लेकिन ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं जो समय पर सजग-सचेत हो जाते हैं। आज व्यक्ति नित नवीन बन्धनों से जकड़ता चला जा रहा है और कर्मक्षय के प्रति शून्य बना हुआ है। किन्तु यह निश्चित है—आप जैसा कर रहे हैं, वैसा ही फल आपको मिलेगा। समय कम या ज्यादा लग सकता है, मगर उसका प्रभाव निश्चित रूप से पड़ेगा।

जिस तरह हम कोई मेडिसन लेंगे तो उसका प्रभाव हम पर ही पड़ेगा लेकिन कब व कितना पड़ेगा, यह तो उसके गुण पर ही निर्भर करेगा। इसी तरह का प्रभाव पड़ता है—कर्जे पर। हमने जितना कर्जा लिया है, वह हमें निश्चित चुकाना पड़ेगा चाहे किसी भी जन्म में किसी भी रूप में क्यों न चुकाया जाए। इसके बिना हम ऋण-मुक्त नहीं हो सकते हैं।

जोधपुर के पास एक मकराना ग्राम हैं, जहां संगमरमर का अथाह भण्डार है। एक दिन वहां एक अग्रवाल दम्पति आये। उनके साथ एक डेढ़ साल का बच्चा था। उन्हें किसी दूसरे गांव में जाना था, लेकिन सन्ध्यारानी ने अपना बसेरा कर लिया था। अतः उन्होंने रात्रि विश्राम वहीं करने का निर्णय लिया। वे पति-पत्नी

एक धर्मशाला में आए और बाहर शीतल सुमन के सुगन्धित सौरभ का आस्वादन कर रहे थे। उस धर्मशाला में एक तरफ कच्चा प्रांगण था। वह बालक खेलता खेलता वहां चला गया और खेलने लगा। उसके मां-बाप इस बात से अनभिज्ञ थे कि बच्चा कहां है ? तभी एक व्यक्ति उधर से जा रहा था कि उसकी नजर उस बच्चे की तरफ गई। वह देखता है—एक भयंकर विषधर सर्प उस बालक के ईर्द-गिर्द बैठा है और अपने फन को बार बार बालक के मुंह के पास ले जा रहा है। बालक उस सांप के फन पर मिट्टी की मुट्ठियां भर भर कर डाल रहा है। तब वह व्यक्ति जोर से चिल्लाकर कहता है "यह किसका बच्चा है, इसे ले जाओ नहीं तो यह सांप इसे काट लेगा। यह आवाज सुनकर उसके मां-बाप आते हैं और जोर-जोर से विलाप करते हैं—"कहते हैं कि कोई मेरे बच्चे को बचा दो, भीड़ इकट्ठी हो जाती है, लेकिन किसी की यह हिम्मत नहीं कि वहां से उस बच्चे को उठाकर ले आए। उसके मां-बाप की भी हिम्मत नहीं कि वे बच्चे की जिन्दगी के लिए अपनी जिन्दगी को खतरे में डालें।

संयोग से उधर से गुजरता हुआ एक राजपूत वहां जमा भीड़ को देख कर पास आता है। स्थिति की विकटता को समझकर वह बालक के पिता से कहता है कि देखिए मेरे पास बन्दूक है और मेरा निशाना अचूक है। मैं एक ही गोली में सर्प का खात्मा कर सकता हूं, मगर कदाचित् निशाना चूक जाये और इस बच्चे को कुछ हो जाए तो आपकी जिम्मेदारी है। यद्यपि मैं पूर्ण कोशिश सर्प के लिए ही करूंगा। तब उसके पिता कहते हैं आप कुछ भी लिखवालें, मगर मेरे बच्चे को बचा दें। वे लिख देते हैं। उधर वह राजपूत निशाना लगाता है तो गोली सर्प की ठुड्डी पर चोट करती हुई आगे निकल जाती है और सर्प अचेत हो जाता है। कई व्यक्ति सोचते हैं कि सर्प मर गया है और उनमें से एक व्यक्ति बच्चे को उठाकर ले आता है। इधर उस सर्प को मरा हुआ जानकर लोग उसे धर्मशाला के पीछे पटक देते हैं।

करनी का फल—कर्ज दो जन्म पूर्व का—

वह राजपूत भी रात्रि विश्राम उस धर्मशाला में ही करता है। प्रातःकाल लोग क्या देखते हैं कि वह राजपूत अचेत हो गया है और उसके शरीर पर सांप के काटने के निशान हैं। इधर यह देखकर लोग इकट्ठे होने लगते हैं। उनमें से कुछ कहते हैं कि "जैसा किया वैसा पा लिया" कोई उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं। कहने का मतलब जितने लोग उतनी बातें बनने लगी। संयोगवश ही वहां एक मान्त्रिक आ गया, जो सर्प मन्त्र करना जानता था। उसने पूछा कि भाई, यहां क्या हो गया। तब उनमें से किसी ने सम्पूर्ण वृतान्त सुना दिया। मंत्रवादी कहने लगा—मैं मन्त्र के द्वारा सर्प को बुलाकर पूछ तो सकता हूं—उसने इन्हें क्यों काटा ? मगर

मैं यह नहीं कह सकता कि वह इसका जहर चूसकर इसे जीवित कर देगा ? तब सब कहते हैं आप बुलाइये तो सही । इधर उस मंत्रवादी ने एक दस साल के बच्चे को बुलाकर खड़ा किया और मंत्र बोलने लगा । मंत्र बोलने के बाद वह लड़का सांप की वाणी में बोलने लगा कि मुझे इस राजपूत ने गोली क्यों मारी ? मैंने इसका क्या बिगाड़ा ? मैं उस बच्चे को मारने के लिए नहीं आया । मेरे और उसके सम्बन्ध तीन जन्मों के पहले से हैं । तब मैं साधारण गरीब व्यक्ति था और वह बच्चा सेठ था । तब मैंने उससे पांच सौ रुपये उधार लिए, लेकिन अभाव ग्रस्तता की वजह से मैं चुका नहीं सका, फिर दूसरे जन्म में मैं दूसरी योनि में चला गया और मुझे उसका पता नहीं चला । तीसरे जन्म में सांप बना हूं और इस बच्चे को देखते ही मुझे जाति: स्मरण ज्ञान हो गया । अत: मैं उससे माफी मांगने के उद्देश्य से फन ऊपर नीचे कर रहा था । वह मुझे मिट्टी डाल डाल कर धिक्कार रहा था । मेरा व इसका तो तीन जन्म का सम्बन्ध था । लेकिन उस राजपूत ने मुझे गोली क्यों मारी ?

तब वहां पर खड़े सभी व्यक्तियों ने कहा कि नागदेवता, हमें तो तुम्हारे सम्बन्धों का पता नहीं था । यदि हमें यह मालूम होता तो वह इस तरह नहीं करता इसने तो सोचा कि यह छोटा बच्चा है, कुछ समझता नहीं है । यदि इसने कोई ऐसी हरकत की जिससे आप कुपित होकर इसे काट दो तो यह अच्छा नहीं होगा । इस लिए ही उन्होंने गोली चलाई । आप इसका जहर चूसकर इसे पुन: जीवित कर दें, तब उसने कहा कि मैं एक शर्त पर जहर वापस चूस लूंगा कि वह व्यक्ति मेरे पांच सौ रुपये चुका दे और बच्चे को दे दें । तब सबने कहा कि यह तो अचेत पड़ा हैं अभी यह कैसे देगा ? तब नाग ने कहा अभी आप में से कोई दे दो । इसे होश आने पर पुन: इससे ले लेना । इतने में ही एक सेठ खड़ा था, उसने अपनी जेब में से रुपये निकाले और उस बच्चे को देने लगा । उसी क्षण ही सर्प आया और उस व्यक्ति के शरीर में से उसने जहर चूस लिया और चला गया ।

सर्प के जाते ही वह राजपूत उठकर खड़ा हो जाता है और कहता है कि आज तो मैं बहुत देर तक सोया रहा और आपने मुझे उठाया ही नहीं ? फिर वह कहता है कि यह भीड़ इक्कट्ठी क्यों हो रही है ? तब एक व्यक्ति ने कहा—तुम्हें नींद नहीं आ रही थी, तुम्हें तो सर्प ने काट लिया था और अब उसने इस शर्त पर तुम्हारे शरीर से जहर चूसा है कि तुम उस सर्प के पांच सौ रुपये उस बच्चे को चुका दो । तब उस राजपूत ने उसी क्षण अपना ऊंट तीन सौ रुपये में बेचा, डेढ़ सौ रुपये में अपनी बंदूक गिरवी रखी और पचास रुपये किसी से लेकर उस बच्चे को दिए ।

कर्म सिद्धान्त—

यह सत्य घटना है। इसे मैं आपको इसलिए बता रहा हूं कि कर्मों का फल अवश्य मिलता है और कर्ज को लेने के बाद उसे भी चुकाना पड़ता है, चाहे किसी जन्म में, या किसी रूप में क्यों न चुकाना पड़े। आज हम जो कर रहे हैं—अच्छे कर्म या बुरे कर्म या बुरे कर्म, उनका फल हमें अवश्य ही मिलेगा।

आज इस बात को विज्ञान भी स्वीकार करने लगा है कि किसी भी कार्य के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है। बिना कारण के कार्य नहीं होता। इस कारण ही तो संसार में भेद दिखाई देता है गरीबी, अमीरी का, प्रतिभा सम्पन्नता व बुद्धिहीनता का। दूसरे रूप में हम यह कह सकते हैं कि यह सब पूर्वजन्म के परिणाम स्वरूप ही होता है।

आज की पीढ़ी संस्कारों के प्रति सजग नहीं है। वह सोचती है कि जो सुख संसार में है उसे छोड़ना मूर्खता है। वह यह तर्क देती है कि यह जन्म अब मिलेगा ही नहीं। अतः ऐशो-आराम को छोड़ना मूर्खता है। लोग कहते हैं कि—

न कोई देखा आवता, न कोई देखा जात।
स्वर्ग नरक और मोक्ष की, गोल मोल है बात॥

न तो स्वर्ग है न ही नरक है, न कोई आता है, न ही पुनर्जन्म होता है। ये सब व्यर्थ की बातें हैं। लेकिन हमारे सामने अनेक ऐसी सत्य घटनाएं घट जाती है कि सन्देह करने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता है।

देखिए। उस बात को विज्ञान भी मानता है कि दो सन्तान जो एक साथ पैदा होती है, उन्हें समान एज्यूकेशन (शिक्षा) सोसायटी (संस्कार) और फैसेलिटीज (सुविधाएं) मिलती हैं फिर भी एक प्रतिभा सम्पन्न और एक बुद्धू रह जाती है, एक गरीब दूसरी अमीर बन जाती है। इस सबका प्रमुख कारण पूर्वजन्म के कर्म ही होते हैं। क्योंकि जब इस समय उन्हें सबकुछ समान मिलता है, तो इस रूप में उनकी भिन्नता का कोई कारण दिखाई नहीं देता। यह सब पूर्वजन्म के संस्कारों का प्रभाव होता है।

संस्कारों का अभाव—

लेकिन आज संस्कार की तरफ बहुत कम ध्यान दिया जाता है। बच्चों की किस तरह की आदतें हैं? वह स्कूल में क्या करता है? गुरुओं के प्रति उनका व्यवहार कैसा है? इस तरफ माँ-बाप ध्यान नहीं देते हैं। जबकि पहले माताएं अपनी सन्तान के संस्कारों के प्रति बहुत सजग रहती थी। बचपन से ही उन्हें धार्मिक संस्कार देती थी। उस अक्षर ज्ञान को महत्व नहीं दिया जाता था। उन्हें शिक्षा दी जाती थी आतिथ्य सेवी, सुसंस्कृत होने की, सभ्य व विनम्र आचरण की। उपनिषदों में कहा गया है—

सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमद........................

संस्कार दिए जाते थे सदा सत्य बोलो, कभी झूठ न वोलो, सभी के प्रति विनम्र वनों, विद्याध्ययन में प्रमाद न करो, माता-पिता, गुरु और अतिथि को देवता के समान समझो और उनकी सेवा के लिये प्रत्येक क्षण तत्पर रहो।

आजकल उन्हें इस प्रकार की शिक्षा नहीं दी जाती है। उन्हें इंगलिश स्कूल में दाखिल करवा देते हैं, जहाँ प्रथम परिचय उनका कुत्ते, विल्ली, चूहे से होता है। अव वताइये जव शुरु से ही उन्हें यह सिखाया जाता है, तव कहां से वे उन्नत संस्कार ग्रहण करेंगे? आजकल ईश्वर की प्रार्थना कराते तो लोगों को शर्म महसूस होती है और फिल्मी गीत स्वयं भी गुनगुनाते हैं और वच्चों को भी वही शिक्षा देते हैं। वड़े कहते हैं "वेटे टी. वी. में जो प्रोग्राम आ रहा है, उसके साथ तुम भी प्रेक्टिस किया करो।

ऐसी स्थिति में वच्चों को दोष देना गलत है। दोष है वड़े लोगों का, जो उन्हें विपरीत मार्ग पर चलने की शिक्षा देते हैं। इस कुशिक्षा के कारण उनमें आत्म-हीनता की भावना पनपती है, जिसके परिणाम स्वरूप वे मानसिक सन्तुलन वना नहीं पाते हैं और शीघ्र ही हतोत्साहित होकर जिन्दगी समाप्त करने का निर्णय कर लेते हैं।

संस्कारहीन शिक्षा पद्धति—

आजकल वड़े वड़े वहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति जरा जरा सी वात पर आत्म-हत्या कर लेते हैं। वताइये वह शिक्षा क्या काम की जो व्यक्ति में मानसिक सन्तुलन ही नहीं वना सके? वड़े लोगों की वात तो वहुत दूर है छोटे वच्चे इस तरह की हरकतें करते हैं। आए दिन अखवार में आता है कि 8 वर्ष के, 10 वर्ष के वच्चे खो गये हैं, उन्हें उचित जगह पर पहुंचाने वाले व्यक्ति को अमुक ईनाम दिया जाएगा। वताईए, यह सव क्या हो रहा है? इसमें वच्चे का दोष नहीं, उसे तो जिस प्रकार के संस्कार मिलेंगे वह तो वैसा ही कार्य करेगा।

जिन अभिभावकों का दायित्व वच्चों में अच्छे संस्कार डालना है, वे ही वच्चों के सामने संकुचित प्रवृतियाँ अपनाते हैं। लड़ते झगड़ते हैं, मार पीट करते हैं, तो वच्चा अच्छे संस्कार कहां से सीखेगा? जवकि दोष वच्चों को दिया जाता है। स्पष्ट शव्दों में कहा जाय तो हमारी गति ठीक विपरीत दिशा में हो रही है। आज वच्चों के समक्ष जो वायुमण्डल प्रस्तुत होता है, वह प्रायः अश्लीलता से परिपूर्ण है। आज के माता-पिता संस्कार प्रस्तुत करते हैं वीज वोते हैं—चारित्रिक पतन के और आशा करते हैं चरित्र निष्ठा की। कैसी विडम्वना है? आप किस तरफ अग्रसर हो रहे हैं?

विचारने का विषय है कि आज का हमारा वायुमण्डल किस प्रकार का है? इस प्रकार के दूषित वायुमण्डल में हम किस प्रकार से उम्मीद करें कि वच्चे संस्कार

सम्पन्न होंगे ? कई बार माताएं कहती हैं—महाराज—श्रीजी, यह गाली देता है, इसे नियम करादो। तब मैं कहता हूं कि पहले तुम नियम करो। तब वह कहती है महाराज श्रीजी, बच्चों के लिए खुली रख दो, क्योंकि उन्हें तो कहने में आ जाती है। जब बच्चों को आप गाली देती हैं तो फिर बच्चे गाली देना सीखे तो क्या आश्चर्य है ?

बालक कच्ची पौध—

बालकों का जीवन एक कच्ची पौध की भाँति होता है। उन्हें जिस तरफ मोड़ने का प्रयास किया जाए, वे उसी तरफ बढ़ जाते हैं। बच्चों को यदि सही दिशा मिल जाए तो वे सही रूप में आगे बढ़ेंगे। इसलिए बच्चों को सभ्य व सुसंस्कृत इंसान बनाना चाहते हैं तो उन्हें उन्नत संस्कार, स्वच्छ वायुमण्डल प्रदान करें। उसी से इन्हें वास्तविक आनन्द की प्राप्ति हो सकेगी। वे वास्तविक आनन्द की दिशा में बढ़ सकेंगे।

5 सितम्बर, 1987

———

"शरीर धारी मनुष्य तो बहुत हैं, लेकिन मनुष्यत्व/मानवता का मिलना दुष्कर है। मानवी प्रज्ञा व बुद्धि, सोचने-समझने की योग्यता हमें मिली है। जब इसका सही उपयोग हो तब ही यह मूल्यवान है, वर्ना इसकी कोई कीमत नहीं है।"

चारित्रिक शक्ति का मूल्यांकन

संसार में जितने भी तत्त्वों का मूल्यांकन, अन्वेषण किया जाता है, वे निःसन्देह बहुमूल्य होते हैं। लेकिन इन तत्त्वों के अलावा कुछ तत्त्व ऐसे होते हैं, जिनकी कोई कीमत नहीं आंकी जा सकती। वह तत्त्व मनुष्य जीवन माना गया है।

वैसे तो शास्त्रकारों ने मनुष्य जन्म को दुर्लभ बताया है, मगर मनुष्य उतना दुर्लभ नहीं है, जितना मनुष्य-पन दुर्लभ है। आज शरीर से मनुष्य का चोला तो बहुत व्यक्तियों को मिल जाता है, मगर मनुष्य रूप में मनुष्यता का मिलना बहुत कठिन-दुष्कर है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है—

"माणुस्सं खु सु दुल्लहं"

शास्त्रकार कहते हैं कि मानव जीवन दुर्लभ है, मगर सरकार जनसंख्या से दुःखी हो रही है। यह बड़ी अटपटी बात लगती है। एक तरफ दुर्लभता मानी गयी है और दूसरी तरफ इसी से परेशानी हो रही है।

लेकिन इसके सम्बन्ध में यदि हम गहराई से अध्ययन करें तो हमें विदित होगा कि मनुष्य रूप शारीरिक बनावट में तो मिलता है, मगर उसका सही दिशा में प्रयोग-उपयोग नहीं होता है। तुलसीदास जी ने भी कहा है—

"बड़े भाग मानुष तन पावा।
सुर दुर्लभ सद्ग्रन्थन गावा।।

मानव जीवन बड़े भाग्य, पुण्योदय से प्राप्त होता है। इसी प्रकार महावीर ने मानव जीवन के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं कि—

"माणुसत्त" अर्थात् मानव जीवन में मनुष्यत्व का मिलना दुष्कर है। अनन्त पुण्योदय से हमें यह जीवन मिला है। मानवी प्रज्ञा व बुद्धि, सोचने-समझने की योग्यता हमें मिली है। जब इसका सही उपयोग हो, तब ही यह मूल्यवान है, वर्ना इसकी कोई कीमत नहीं है।

मानवी प्रज्ञा, चन्दन का बगीचा—

एक रूपक मैं आपके सामने रख रहा हूँ—एक राजा था। वह भ्रमण करता-करता एक जंगल में पहुँच जाता है। उसके साथी सेवक उससे बिछुड़ जाते हैं। अंधेरा चारों तरफ से घिर आता है। राजा को कहीं भी कोई स्थान विश्राम के लिए दिखाई नहीं देता, राजा निरन्तर आगे बढ़ता जा रहा है। अचानक उसे एक जगह रौशनी दिखाई देती है। वह उसी दिशा में आगे बढ़ता हुआ चला जाता है। वहाँ एक झोंपड़ी होती है। वह थोड़ी-सी कोशिश करता है उसे खोलने की, और वह झोंपड़ी खुल जाती है। उसमें से एक किसान बाहर आता है। पूछता है—भाई, तुम कौन हो? यहाँ कैसे आये हो? अब तुम अन्दर आ जाओ। अन्दर ले जाकर वह उसका सत्कार-सम्मान करता है। उसे अपने पास जो कुछ रूखी-सूखी रोटी पानी था खिलाता-पिलाता है। राजा उसकी आतिथ्य सेवा से बेहद खुश होता है और जब सुबह वह जाने की तैयारी करता है तब किसान से कहता है कि मैं अमुक देश का राजा हूँ तुम कभी मेरे यहाँ आना।

एक रोज वह भील किसान उस राजा के राज्य की तरफ जाता है। वहाँ पहुँचने के बाद वह लोगों से पूछता है कि "भई यहाँ के राजा का मकान कौनसा है? मैं वहाँ जाना चाहता हूं।" लोग उसे पागल और मूर्ख कहते हैं। उसकी हंसी उड़ाते हैं। मगर वह कहता है कि तुम मुझे राजा का पता बता दो क्योंकि एक बार राजा मेरे यहाँ आया और उसने मुझे आने के लिए कहा है। तब किसी ने उसकी मजाक बनाते हुए राजा का महल बता दिया।

वह उस तरफ गया और दरवाजे की तरफ बढ़ने लगा तो द्वारपाल ने उसे धक्का मार दिया। कहा—अबे! कहाँ जा रहा है? दीखता नहीं यह राजा का महल है। तब वह कहता है—"मुझे राजा ने बुलाया है और यह राजा का घर है।"

तब वह द्वारपाल उसे फटकारता है और उसे निकाल देता है। अचानक ही राजा की दृष्टि उस व्यक्ति पर पड़ती है। उसे ध्यान आता है कि यह तो वही व्यक्ति है, जिसने मुझे संकट के समय पनाह दी और मुझे वह सुख दिया जिसे मैं आज तक भी भुला नहीं पाया हूं।

यह ध्यान आते ही राजा एक सिपाही को भेजता है, और कहता है कि वह जो व्यक्ति खड़ा है, उसे आदर के साथ ऊपर लाओ। सिपाही तुरन्त उस किसान को राजा के पास लाता है। राजा उसका स्वागत करता है। उसके ठहरने के लिए बहुत अच्छी व्यवस्था करता है। उसे एक चन्दन का बगीचा भेंट में देता है और कहता है कि तुम इससे अपना जीवन आराम से चलाओ। देखिये, उस व्यक्ति को चन्दन का बगीचा मिलता है, मगर वह उसका उपयोग किस दिशा में करता है?

वह सोचता है कि यदि मैं इन लकड़ियों को बेचूंगा तो अधिक पैसा नहीं मिलेगा। यदि मैं कोयला बनाकर बेचूंगा तो अधिक पैसा मिलेगा। यह विचार कर

वह उसके कोयले बनाकर बेचता है। सारे चन्दन के पेड़ खत्म हो जाते हैं। संयोग समझिये, उस दिन राजा उस तरफ निकलता है। वह देखता है कि इतना बड़ा चन्दन का बगीचा पूरा का पूरा ही खाली है, इसका क्या कारण है ? यह विचार करके वह उस भील-किसान से कहता है—"भाई ! कहो कैसी चल रही है ?" तब वह कहता है—"महाराज ! अब तो केवल एक पेड़ बचा है, बड़ी मुश्किल से गुजारा चल रहा है।"

तब राजा पूछता है कि मैंने तुम्हें इतना बड़ा चन्दन का बगीचा दिया था, तुम्हारी यह हालत कैसे हो गई और यह बगीचा पूरा खाली कैसे हो गया ? तब वह कहता है कि मैंने तो कोयले बना कर बेच डाले।

राजा कहता है कि अरे, यह तो चन्दन की लकड़ी थी। अगर तुम उसे ऐसे ही बेचते तो तुम्हें काफी धन प्राप्त हो जाता। खैर, अब यह जो पेड़ है, उसे मत जलाना।

इसकी लकड़ी लेकर के तुम बाजार में जाओ वहाँ तुम्हें काफी धन मिलेगा। वह जाता है तो उसे बहुत सारे रुपये मिलते हैं। वह राजा से कहता है—"राजन् एक बगीचा और दे दीजिए।"

प्रज्ञा का उपयोग, पर चर्चा में—

ज्ञानीजन कहते हैं कि हमारी बुद्धि प्रज्ञा उस चन्दन के बगीचे की भांति है। यद्यपि आप उस भील किसान की बात पर हंस रहे होंगे। लेकिन आज तो बहुसंख्यक जन मानस की बुद्धि व प्रज्ञा का प्रयोग उसी रूप में हो रहा है। आज अधिकांश व्यक्तियों की बुद्धि तृष्णा, कामना, वासना आदि की पूर्ति में ही क्षीण हो जाती है। यदि हमें बुद्धि का जीवन साधना के रूप में प्रयोग करना है तो जीवन की यथार्थता को समझते हुए उसी रूप में अपने आपको परिवर्तित करना होगा। आज हम देखते हैं कि एक सामान्य प्रतिष्ठा प्राप्ति व उद्देश्य की पूर्ति के लिए इंसान कितना क्रूर बन जाता है। उसका विवेक समाप्त हो जाता है। उसे उचित-अनुचित का कोई ध्यान नहीं रहता है। भाई-भाई की प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिलाने के लिए कैसा कुकृत्य कर देता है ? इसी सन्दर्भ में एक घटना मुझे याद आ रही है।

बम्बई की बात है कि वहाँ एक मन्दिर के ट्रस्ट के चुनाव हो रहे थे। दो भाई आपस में एक दूसरे के विपक्ष में खड़े हुए थे। बड़ा भाई सदाचारी, सत्यनिष्ठ व धर्मनिष्ठ था, सब लोग उसे बहुत चाहते थे। लेकिन छोटा भाई यह देखकर जल-भुन गया। उधर चुनाव में भी बड़ा भाई ही विजयी हो गया था। अतः अब तो छोटा भाई इस योजना में था कि किस तरह से बड़े भाई की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिलाई जाए। इधर बड़ा भाई अपने छोटे भाई के प्रति बहुत स्नेह रखता था, लेकिन छोटे भाई के मन में कपट आ गया था। यद्यपि वह लोगों के सामने प्रेमपूर्ण व्यवहार ही प्रदर्शित कर रहा था।

कुछ दिनों बाद में बड़े भाई की लड़की के विवाह का प्रसंग आया। चूंकि बड़े भाई का अपने छोटे भाई के प्रति अथाह स्नेह व विश्वास था। अतः उसने भोजन व निवास व्यवस्था का काम अपने छोटे भाई को सौंप दिया। छोटा भाई अवसर की तलाश में था ही।

ईर्ष्या कीआग—

उसने भोजन में विष मिलवा दिया। फिर वहाँ से चलने की तैयारी करके अपने बड़े भाई को कहता है—"भाई साहब! मैं थोड़ा बाजार होकर आता हूँ।" उधर उसका छोटा लड़का वहीं आता है और कोई मिठाई खा लेता है। यद्यपि उसने अपने घर पर कह दिया था कि तुम लोग वहाँ कुछ मत खाना, मगर जो कहावत है वह सही है कि जो दूसरों के लिए खाई बनाता है, वही खाई पहले उसे ही निगलती है। यद्यपि उसने अपने भाई की प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिलाना चाहा—उसे लोगों के सामने जलील करना चाहा तथापि हुआ विपरीत ही।

छोटा भाई घर जाता है और घर जाकर देखता है कि दरवाजे पर ताला लगा हुआ है। वह पड़ौस में पूछता है, तो वे कहते हैं—"आपके बेटे की तबीयत बहुत खराब हो गयी थी, अतः वे उन्हें लेकर अस्पताल गई हैं।" वह अस्पताल जाता है। वहाँ देखता है कि लड़के की हालत बहुत खराब है और डाक्टर कह रहे हैं कि खाने के साथ इसने पॉइजन (जहर) खा लिया है। बचने की बहुत कम उम्मीद है। बड़े भाई बड़ी तन्मयता से उसका इलाज करवा रहे हैं। वह आता है और अपने भाई के पैरों में गिर जाता है। उसे बहुत पश्चाताप होता है, अपने किये पर और कहता है—"भईया! आप इसे बचा लीजिए।" तब बड़ा भाई छोटे को आश्वस्त करता है कि "तुम इतने दुःखी मत हो, सब ठीक हो जायेगा। लेकिन यह सब कैसे हुआ, यह मुझे समझ नहीं आ रहा है? क्योंकि जिन-जिन बारातियों ने खाना खाया है, उनकी तबियत भी बहुत खराब हो गई है।" तब छोटा भाई कहता है—"भईया आप उनका इलाज भी जल्दी से जल्दी कराइये।"

यद्यपि उसकी इच्छा यह थी कि मेरे भाई की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जाए और लोग मुझे प्रतिष्ठा देने लगें, लेकिन भाई की अपने बच्चे के प्रति त्याग-भावना को देखकर उसका मन ग्लानि से भर जाता है। वह पश्चाताप की अग्नि में जलने लगता है। अपने आपको धिक्कारने लगता है कि मैं कैसा पापी, नीच इंसान हूँ जो कि अपने भाई को लोगों की नजरों में गिराना चाहता हूँ। और मेरा भाई कितना महान् है जो कि मेरे प्रति कितना विश्वास व स्नेह रखता है, जो अपनी बेटी की शादी के बीच में आकर भी मेरे बेटे का इतनी आत्मीयता से इलाज करवा रहे हैं?

यह विचार आते ही वह अपने भाई के चरणों में गिर जाता है और कहता है—"भईया! यह सब कुछ मेरी वजह से ही हुआ है। मुझ से आपकी प्रतिष्ठा देखी

नहीं गयी, मैं आपको जलील करना चाहता था। इस कारण मैंने यह सब कुछ किया है। आप मुझे माफ कर दीजिए।"

विचारों की उदारता—

ऐसी विषम परिस्थिति में सामान्य व्यवहार रखना कोई सरल कार्य नहीं है। लेकिन बड़े भाई ने तो बिल्कुल सामान्य व्यवहार अपने भाई के प्रति रखा कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो। इतना ही नहीं उस घटना के बाद बड़े भाई ने छोटे के प्रति अपना स्नेह और भी बढ़ा दिया।

वे दोनों ही इंसान थे। दोनों के पास ही बुद्धि, प्रतिभा, योग्यता थी। मगर दोनों ने अपनी बुद्धि-प्रतिभा का प्रयोग अलग-अलग रूप में किया। एक ने इसका उपयोग सृजनात्मक दिशा में किया और दूसरे ने विध्वंसात्मक दिशा में किया। बहुत कम ही ऐसे विरले व्यक्ति आज के युग में मिलेंगे जो अपनी बुद्धि का प्रयोग सही दिशा में करते हैं।

इंसानियत जिन्दा है—

एक ऐसा ही प्रसंग और मेरे ध्यान में आ रहा है। एक समय की बात है-एक व्यक्ति बस में सफर कर रहा था। उसके पास एक बैग था। जब उतरने लगा तो वह अपना बैग वहीं भूल गया। कुछ समय पश्चात् उसे ध्यान आया। वह पुनः बस पर आया और उसने वहाँ आस-पास तथा बस में अपना बैग देखा, लेकिन नहीं मिला। उसने पेपर में विज्ञापन निकाला और कहा कि देने वाले को उचित ईनाम दिया जायेगा। इधर बस में उस व्यक्ति के पास ही एक श्रीमन्त बैठे थे। जैसे ही वह व्यक्ति नीचे उतरा उन्होंने बैग ले लिया था। घर जाकर देखा, उसमें 1400.00 रु. और कई जरूरी कागजात थे। उनके मन में लोभ व कपट आ गया, उन्होंने उसे अपनी आलमारी में रख दिया। एक दिन उन श्रीमन्त का सिर्फ 5/– रुपये का नोट खो गया, वह उसे चारों तरफ देखने लगा—बड़ी अधीरता से। इधर उसी समय उनका नौकर आया और कहने लगा—यह 5/– रुपये का नोट मुझे मिला है, शायद आपका ही कहीं गिर गया है, ले लीजिए। तब वह श्रीमन्त आश्चर्य चकित होकर कभी नोट की तरफ देखते और कभी उस नौकर की तरफ। उन्हें गहरा क्षोभ हुआ स्वयं पर। उनके हृदय में भयंकर उथल-पुथल मचने लगी और उनके विचारों में परिवर्तन आने लगा। वे पश्चाताप करने लगे कि मैंने किस तरह रुपये के पीछे अपने आपको गिरा दिया और यह गरीब है, लेकिन फिर भी उसके मन में तनिक गलत भावना, लोभ, लालच नहीं है।

उनके विचार परिवर्तित हो गये। देखिए उस नौकर ने उस श्रीमन्त हृदय को परिवर्तित कर दिया। वह उस अखबार को मंगवाता है, जिसमें उस व्यक्ति ने विज्ञापन दिया था। फिर वे उसके निवास स्थान पर जाते हैं और कहते हैं—"यह आपका

वैग मुझे वस में मिला था। आप अपनी वस्तु सम्भाल लो। इधर वह व्यक्ति उन्हें धन्यवाद देकर ईनाम के रूप में 100/- रुपयें देता है। मगर वह कहता है—"यह मैं नहीं लूँगा। यदि आप देना ही चाहो तो मेरे उस नौकर को दो, जिसने मेरी आँखें खोल दीं। फिर उसने सारी बात उस व्यक्ति को वता दी।

देखिए, बहुत वड़ा श्रीमन्त कहलाने वाला व्यक्ति अपनी प्रज्ञा का प्रयोग किस रूप में कर रहा है और एक नौकर कहलाने वाला व्यक्ति अपनी प्रज्ञा का प्रयोग किस उच्च स्वरूप में कर रहा है?

इसी प्रकार हमें भी यह चिन्तन-मनन करना चाहिए कि हम अपनी प्रज्ञा का प्रयोग किस दिशा में कर रहे हैं? यदि हमें सही रूप में मानव बनना है—हमें अपनी प्रज्ञा का प्रयोग सही रूप में करना है तो हमें अपने व्यवहारों का निरीक्षण करना होगा। तव ही हमारा जीवन सार्थक वनेगा, अन्यथा तो कुछ आदतों व कुव्यसनों में ही यह हमारा वहुमूल्य मानव जीवन नष्ट हो जावेगा।

शक्ति के उपयोग की दिशा—

जीवन दर्शन के सम्बन्ध में यह चर्चा चल रही है और अमूल्य निधि हमारे हाथ है। अव यह दायित्व हमारा है कि हम उसका प्रयोग किस रूप में करें। आज अधिकांशत: इंसान अपनी वुद्धि का प्रयोग सृजनात्मक दिशा में न करके विध्वंसात्मक दिशा में कर रहे हैं।

आजकल अखवारों में कई घटनायें पढ़ने को मिलती हैं तो यह प्रश्न उठता है कि यह सव क्या हो रहा है? तव मेरे दिमाग में यह वात आती है कि इसके पीछे व्यक्ति का स्वयं का वुद्धि-विवेक होता है, जिसका प्रयोग वह सही दिशा में नहीं कर रहा है। यद्यपि हमारे पास वह शक्ति है, जो देवताओं के पास नहीं है। हम वह सव कर सकते हैं जो देवता भी नहीं कर सकते हैं।

उर्जा है, शक्ति है, प्रतिभा है, हम चाहें तो इनका सही रूप में प्रयोग करके अपने जीवन को उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचा सकते हैं और अगर उनका अनुचित प्रयोग करें तो गर्त में ले जाकर अपने जीवन को अंधकार में परिवर्तित कर सकते हैं।

शील का चमत्कार—

एक ऐतिहासिक घटना मैं आपके सामने रख रहा हूँ। कंचनपुर नगर में एक सेठ पुष्पदत्त रहता था। उसकी पत्नी का नाम पुष्पदत्ता था। वहाँ का राजा कनककेतु था। एक वार सेठ के वाहर जाने का प्रसंग आया। तव सेठानी ने उसे एक फूल देते हुए कहा कि यह फूल आप ले जाओ। जव तक मैं चरित्रनिष्ठ रहूंगी तव तक यह मुरझायेगा नहीं।

वह सेठ विदेश में व्यापार के लिए जाता है और वहाँ अपना व्यापार शुरू

कर देता है। लेकिन साथ में वह पूर्ण चरित्र निष्ठता का पालन भी करता है। सेठानी भी पूर्णरूप से सेठ के लिए समर्पित होती हुई अपने चरित्र का पालन कर रही है। वे दोनों प्रत्येक दिन अपने-अपने फूलों को देखते हैं, वे फूल मुरझाना तो दूर, दिन प्रतिदिन महकते चले जा रहे हैं।

मैं चरित्र निष्ठा की बात कह रहा हूँ कि जिसके पास अपना चरित्र है, उसके पास सब कुछ है और जिसके पास यह रत्न नही है, वह मनुष्य नहीं पशु से भी निम्न है। मैं आपको उस सेठ-सेठानी की बात बता रहा हूँ कि वे एक-दूसरे के प्रति पूर्णरूप से समर्पित हैं, उनमें परस्पर एक-दूसरे के लिए अथाह विश्वास है।

वैसे देखा जाए तो फूल जब डाली पर रहता है, तब तक ही महकता है। टूट जाने के बाद मुरझा जाता है। मगर वह फूल तो निरन्तर महकता जा रहा है। इसका कारण उनकी चारित्रिक शक्ति ही थी। चरित्र में/शील में ऐसी अद्‌भुत शक्ति होती है कि कई आश्चर्यपूर्ण घटनायें घट जाती हैं, जिसकी हमें कल्पना भी नहीं होती।

एक दिन सेठानी स्नान करके बाल सुखाने के लिए छत पर चली गई। उसके घर के पास ही राजा का महल था। संयोग से उस दिन राजा ऊपर ही था—और उसकी नजर सेठानी पर पड़ी। उसके विचारों में विकृति आ गई। वह उसे एकटक देखने लगा। इधर कुछ क्षण के बाद ही सेठानी की नजर भी उधर ही चली गई। उसने राजा को अपनी तरफ देखते पाया तो वह उसी क्षण नीचे उतर गई और सोचने लगी कि मेरी ऐसी सुन्दरता का क्या लाभ, जिससे राजा की नजरें बदल गई। फिर अचानक ही मन में आता है कि राजा तो पिता के रूप में मिले तो देख सकता है। मैं किस प्रकार से गलत विचार अपने मन में लाने लगी। इस तरह वह पश्चाताप करती है और अपने मन को शुद्ध कर लेती है।

लेकिन राजा के मन में तो काम भावना जागृत हो चुकी थी। उसने मंत्री को बुलाया और पूछा कि वह मकान किसका है? तब मन्त्री ने कहा—"वह मकान पुष्पदत्त सेठ का है, वह अभी विदेश गया हुआ है और उसकी पत्नी अकेली है।" राजा ने कहा—"मैं उससे मिलना चाहता हूँ"। तब मन्त्री ने समझाते हुए कहा—"राजन्! आपकी यह दृष्टि ठीक नहीं है। आपके लिए तो सारी प्रजा पुत्र-पुत्री के समान है।' तब राजा कहता है—"हमें उपदेश की जरूरत नहीं है। हम उससे मिलना चाहते हैं। चाहे कैसे भी मिलें।" मन्त्री ने कहा कि "सेठ अभी यहाँ पर नहीं हैं। अतः वह न तो आपको बुला सकती है और न स्वयं आ सकती है। आपका भी उसके घर जाना उचित नहीं है।" किन्तु राजा कुछ मानने को तैयार नहीं था। तब मन्त्री ने सोचा कि समझाना बेकार है। उसने कहा—"राजन् एक उपाय है, आप योगी बनकर उसके द्वार पर जाइए, जब वह भिक्षा देने आए तब उसके दर्शन कर लेना।"

राजा को बात जच गई। राजा योगी का वेश बनाकर उसके मकान पर गया और बोलने लगा—"भिक्षाम्-देहि, भिक्षाम्-देहि" तब वह सेठानी बाहर आती है और पूछती है—"महात्मन् ! आपको क्या चाहिए ?" तब राजा सोचता है, क्यों न इसकी परीक्षा ली जाए, यह कितनी चरित्रवान है। वह कहता है—"मेरी तो आम खाने की इच्छा हो रही है।" तब सेठानी शंकित हो जाती है कि यह तो राजा ही है और भेष बदलकर आया है। यद्यपि आम का मौसम नहीं था, मगर उसका यह विचार था "अतिथि देवो भव:" वह अतिथि को देवता तुल्य समझती थी। इसलिए खाली हाथ नहीं भेजना चाहती थी।

डंडा बन गया वृक्ष—

उसने एक लकड़ी का डंडा लिया और चौक में जमीन खोदकर उसे खड़ा कर दिया और फिर कहा कि—"यदि मेरी चरित्र-शक्ति अखण्डित रही हो तो यह आम का वृक्ष बन जाय और इस पर आम लग जाएं।" देखते ही देखते वह डंडा बड़ा सघन आम का वृक्ष बन गया और उस पर आम लगने लगे। वह मंत्री भी राजा के पीछे-पीछे आया था कि कहीं राजा उसे अकेली देखकर कोई गड़बड़ न करदे। वह भी खड़ा खड़ा आश्चर्य चकित निगाहों से देखने लगा। इधर सेठानी के घर के पास ही अच्छी खासी भीड़ यह आश्चर्य देखने को एकत्रित हो जाती है। राजा भी यह देखकर दंग रह जाता है। इधर संयोग से वह सेठ भी उसी दिन अपने घर आता है और देखता है कि मेरी पत्नि अपनी चरित्र निष्ठा का प्रसार कर रही है। वह भी देखने के लिए भीड़ में खड़ा हो जाता है। कुछ समय बाद वह सेठानी कहती है कि "हमारे राजा चरित्रनिष्ठ हों तो इस पेड़ पर लगे आम पक जायें और दस-बीस नीचे भी गिर जायें, "लेकिन न तो एक भी आम पकता है और न ही नीचे गिरता है। राजा के मन में गहरा पश्चाताप उमड़ पड़ता है। वह अपने आपको धिक्कारता हैं। मैं कैसा पापी हूँ जो कि अपनी प्रजा पर ही गलत दृष्टि रखता हूँ। उधर वह सेठ भीड़ में से निकल कर आता है और कहता है कि—"यदि मेरा चरित्र बल अखण्डित रहा हो तो कुछ आम पक जाएँ और दस-बीस पक कर नीचे गिर जाएँ।" देखते ही देखते पेड़ पर आम पक जाते हैं और नीचे गिरने लगते हैं। अब तो राजा शर्म से पानी-पानी हो जाता है, यद्यपि वह दूसरे वेष में था। इसलिए किसी न उसको नहीं पहचाना।

लेकिन सेठानी ने उसके चेहरे को देख लिया था कि अब वह शुद्ध हो गया है। तब वह कहती है "यदि हमारे राजा का मन अब शुद्ध हो गया हो तो यह सब आम पक जाएँ। सारे आम तुरन्त पक जाते हैं।"

ये काल्पनिक बातें नहीं हैं। यह सब हकीकत में होता है—यदि हमारे चरित्र बल में शक्ति हो। आज चरित्र में कई विकृतियां आ गयी हैं। इस कारण ये सब घटनाएँ काल्पनिक लगती हैं। जिस तरह से आज विज्ञान की प्रगति की बातें 50 वर्ष

पुराने लोगों को आश्चर्यजनक लगती हैं, उसी तरह आज हमको यह सब बातें आश्चर्यजनक लगती हैं।

आत्म-चरित्र में वह शक्ति होती है जो हमें अजूबे की भांति लगती है। लेकिन आज उनका प्रयोग किस दिशा में हो रहा है यह विचारने का विषय है।

हमारे अन्दर अटूट शक्ति का भण्डार है, लेकिन हम उसका प्रयोग किस रूप में कर रहे हैं? यदि हम उसका प्रयोग सही दिशा में करते हैं तो वह हमारी एक उत्कृष्ट शक्ति के रूप में हमारी रक्षा करती है और अगर अनुचित दिशा में उसका प्रयोग हो तो वह हमारे विनाश का कारण ही बनती है।

यद्यपि मानव तन तो सभी जो मनुष्य हैं उनको मिला है, लेकिन यदि हम उस मनुष्य जीवन का, उससे प्राप्त बुद्धि—प्रज्ञा का सही प्रयोग नहीं करें तो वह जीवन पशु तुल्य ही होगा। मनुष्य मनुष्यता से होता है।

यदि आप चरित्र का पालन दृढ़ता के साथ करेंगे तो आपका जीवन सफल बनेगा और आप उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच सकते हैं। मेरा आपसे यही कहना है कि आप अपनी बुद्धि, प्रज्ञा, समझ-शक्ति का प्रयोग सही दिशा में करें ताकि आपका जीवन धन्य बने।

6 सितम्बर, 1987
